Islam the Religion of Humanity का हिन्दी रूपांतर

मानवता का धर्म
इस्लाम

मूल अंग्रेजी लेखक
मौलाना मुहम्मद अली "लाहौरी"

अनुवाद
डॉ. खुर्शीद आलम तारीन

2001 AD

अहमदिय्या अंजुमन इशाअते इस्लाम (लाहौर) भारत
कलमदान पुरा ,श्रीनगर ,कश्मीर
पिन. 190002

Islam the Religion of Humanity का हिन्दी रूपांतर

मानवता का धर्म
इस्लाम

मूल अन्ग्रेज़ी लेखन

मौलाना मुहम्मद अली "लाहौरी"

अनुवाद

डॉ. ख़ुर्शीद आलम तारीन

2001 AD

अहमदिय्या अंजुमन इशाअते इस्लाम (लाहौर) भारत

क़लमदान पुरा ,श्रीनगर ,कश्मीर

पिन. 190002

अहमदिय्या सम्प्रदाय के संस्थापक
हज़रत मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहिब(अ) की घोषणा

"वह व्यक्ति *लानती* है जो हज़रत पैग़म्बरश्री (मुहम्मद)सल्ल के सिवा, उन के बाद , किसी और को *नबी* विश्वास करता है ,और उन की *ख़तमे नबूवत* को तौड़ता है।"

(अख़बार *'अल–हकम'* ,क़ादियान ,10जून 1905 ई. ,पृ. 2)

© कॉपीराइट सर्वाधिकार 2001

अहमदिय्या अंजुमन इशाते इस्लाम (लाहौर) हिन्द
क़लमदान पुरा ,श्रीनगर ,कश्मीर — 19002

अहमदिय्या अंजुमन इशाअते इस्लाम — इस अन्तर्राष्ट्रीय इस्लामी प्रचार केन्द्र की स्थापना 1914 ई. में लाहौर में हुई। इस महा प्रचार केन्द्र के नींवदाता हज़रत मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहिबअस के वरिष्ठ शिष्य थे। इस प्रचार केन्द्र का एकमात्र उद्देश्य इस्लाम की वह उदार, सहिष्णु और शांतिप्रिय छवि पुनः दुनिया के सामने रखना है ,जिस का सहज चित्रण कुर्आन शरीफ़ और हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मदसल्ल के परमशुभ चरित्र में विद्यमान है। इस संस्था ने अब तक संसार की अनेक प्रमुख भाषाओं में इस्लाम पर अति विपुल साहित्य प्रकाशित किया है ,जो सर्वत्र अपार श्लाघा और ख्याति प्राप्त कर चुाका है।

प्रथम हिन्दी संस्करण : 2001 ई.

हज़रत मौलाना मुहम्मद अली लाहौरी

मन् 1874 ई. में पंजाब (भारत) में पैदा हुए। आपका शैक्षिक रिकार्ड बडा उत्कृष्ट है। 1899 ई. में आप ने एम.ए. और लॉ की डिगरियाँ प्राप्त कीं। तत्पश्चात् वकालत का अर्थकर व्यवसाय अपनाने ही वाले थे कि उन्हें उन के आध्यात्मिक गुरु, हज़रत मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहिब (चौदवीं सदी हिजरी के **मुजदिद्द** यानि इस्लामी युग सुधारक और **प्रतिज्ञात मसीहा**) ने उन्हें आदेश दिया कि वे अपना जीवन इस्लाम की सेवा के लिये समर्पित कर दें। आदेश पाते ही आप ने अपनी सारी सांसारिक योजनाएं त्याग दीं, और गुरु के चरणकमलों में कादियान आ बैठे। यहाँ उन्हों ने अपने गुरु से इस्लामी सत्यता संबंधी वो वो अनमोल मोती बटोरे, जो संपूर्ण आधुनिक जगत् को इस्लाम की शिक्षाओं की ओर आकर्षित करने वाले थे। बहुत जल्दी वे **सदर अंजुमन अहमदिय्या कादियान** के सेक्रेटरी बना दिये गए। 1901 ई. में हज़रत मिर्ज़ा साहिब ने उन्हें "Review of Religions" का संपादक नियुक्त किया,यह पत्रिका अंग्रेज़ी भाषा में इस्लाम की अग्रणी पत्रिकाओं में से एक है। इस में प्रकाशित लेखों ने थोड़े ही समय में संसार वासियों के सामने इस्लाम का सुन्दर, आकर्षक और पुरातन स्वरूप रख दिया। फलतः अनेक न्यायशील ग़ैर-मुस्लिम विद्वानों और विचारकों ने इस्लाम संबंधी अपनी परंपरागत राय बदल ली, इन में रूस के दार्शनिक टॉलस्टाय (Tolostoy) का नाम उल्लेखनीय है।

1914 ई. में हज़रत मिर्ज़ा साहिब के उत्ताधिकारी हज़रत मौलाना नूरुद्दीन का दहांत होते ही **अहमदिय्या** सम्प्रदाय में सैद्धांतिक मुद्दे को लेकर मतभेद उत्पन्न होगया। एक घुट ने अपने स्वार्थी प्रयोजनों के निमित हज़रत मिर्ज़ा साहिब को मुजदिद्द(समुद्धारक सन्त) से **नबी** बना दिया, और उनके न मानने वाले को काफ़िर और इस्लाम की परिधि से बाहर करार दिया। इस ग़ैर-इस्लामी हरकत पर हज़रत मौलाना मुहम्मद अली और उनके साथी कादियान छोड़ कर लाहौर चले आए, और विश्वविख्यात इस्लामी प्रचार केन्द्र **"अहमदिय्या अंजुमन इशाते इस्लाम लाहौर"** की स्थापना की। उस दिन से लेकर अपने देहांत (1951) तक हज़रत मौलाना मुहम्मद अली ही इस प्रचार केन्द्र के अध्यक्ष और संचालक रहे। आपके नेतृत्व में अंजुमन की शाखाएं दुनिया की चारों दिशाओं में फैल गयीं। आपका रचा उर्दू और अंग्रेज़ी इस्लामी साहित्य लोकप्रियता की चरम सीमा को प्राप्त हो चका है। आपकी कुर्आन शरीफ़ की उर्दू और अंग्रेजी टीका को सार्वभौम स्वीकृति प्राप्त है। आप ने इस्लाम के हर पहलू पर कलम उठाया है। आप की कृतियों की सूची अन्यत्र दरज है। आप का साहित्य पढ़कर मुसलमान पक्के मुसलमान और ग़ैरमुस्लिम इस्लाम के अति निकट आगए, बाज़ ने इस्लाम भी कबूल कर लिया। बर्तानिया के नवमुस्लिम अंग्रेज़ विद्वान व कुऔन के अनुवादक Marmaduke Pickthall ने हज़रत मौलाना मुहम्मद अली को *वर्तमान युग का अद्वितीय इस्लाम-सेवी करार दिया है।*

اَللّٰهُ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۚ اَلْحَیُّ الْقَیُّوْمُ ۚ
لَا تَاْخُذُهٗ سِنَةٌ وَّلَا نَوْمٌ ؕ لَهٗ مَا فِی السَّمٰوٰتِ
وَمَا فِی الْاَرْضِ ؕ مَنْ ذَا الَّذِیْ یَشْفَعُ عِنْدَهٗۤ
اِلَّا بِاِذْنِهٖ ؕ یَعْلَمُ مَا بَیْنَ اَیْدِیْهِمْ وَمَا خَلْفَهُمْ ۚ
وَلَا یُحِیْطُوْنَ بِشَیْءٍ مِّنْ عِلْمِهٖۤ اِلَّا بِمَا شَآءَ ۚ
وَسِعَ كُرْسِیُّهُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ ۚ
وَلَا یَـُٔوْدُهٗ حِفْظُهُمَا ۚ
وَهُوَ الْعَلِیُّ الْعَظِیْمُ ﴿۲۵۵﴾

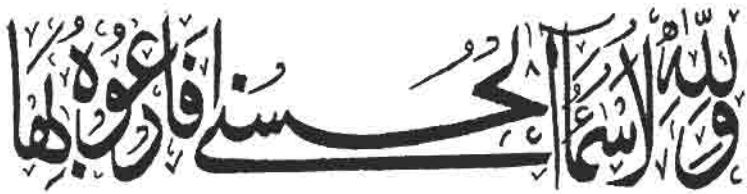

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

अल्लाह , अपार दयालु , सतत कृपालु के (मंगलमय) नाम से।

अनुवादक की ओर से .....

प्रस्तुत पुस्तिका हज़रत मौलाना मुहम्मद अली लाहौरी र.अ. (देहांत 1951 ई.) की सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ी कृति ***"Islam – The Religion of Humanity"*** का हिन्दी रूपांतर है। मूल कृति वास्तव में हज़रत मौलाना मुहम्मद अली लाहौरी र.अ. की स्मारकीय कुर्आनी टीका ***(The English Translation of the Holy Quran, with Commentary)*** के प्राक्कथन का सारांश है। यह विश्वविख्यात टीका सन् 1917 ई. में प्रकाशित हुई थी। प्राक्कथन के इस सार को पुस्तिका के स्वतंत्र रूप में सब से पहले सन् 1928 ई. में छापा गया। इसकी उपयोगिता एवं लोकप्रियता का अनुमान इसी एक बात से लगा लें कि अब तक इसकी सेंकड़ों हज़ार प्रतियां छप कर दुनिया भर में मुफ़्त बंट चुकी हैं। चालीस से अधिक भाषाओं में केवल इस के अनुवाद ही प्रकाशित हो चके हैं।

इसका प्रथम हिन्दी अनुवाद सन् 1976 ई. में श्रीनगर जमाअत द्वारा प्रकाशित हुआ था ,यह अनुवाद हमारे सम्माननीय मित्र अल-हाज श्री मुहम्मद जुनेद अत्हर *" सत्यार्थी "* ने किया था। वर्तमान हिन्दी अनुवाद केलिए हम

ने हमारी अमेरीकी जमाअत द्वारा प्रकाशित ***" Islam — The Religion of Humanity"*** के संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण का चयन किया है। संशोधन और परिवर्धन का यह लाभदायक कार्य यू.के. (U.K.) जमाअत ने सन् 1985 ई. में किया था।

अंग्रेज़ी संपादक महाशय अपनी प्रस्तावनात्मक टिप्पणी में लिखते हैं :

" पुस्तिका की लोकप्रियता को दखते हुए यह महसूस हुआ कि इस का आकार बढ़ना चाहिए ताकि इस में इस्लाम की पावन शिक्षाओं का अधिकाधिक समावेश हो सके। चूंकि इस पुस्तिका के प्रथम प्रकाशन के उपरांत हज़रत मौलाना मुहम्मद अली लाहौरी[र.अ.] ने इस्लाम पर अनेक सुविख्यात गन्थ प्रकाशित किए , जो एक से बढ़ कर एक ज्ञानप्रद और रुचिकर हैं ,जैसे ***" The Religion of Islam" (1936) . " The New world order" (1944) . " Living Thoughts of The Prophet Muhammad " (1947). " The English Translation of the Holy Qur`an, with Commentary "*** का संशोधित संस्करण ***(1951)*** अत्यादि। इस्लाम धर्म की जो अद्भुत सारगर्भित छवी इन ग्रन्थों में प्रतिपादित हुई है उस को देख कर मन यही चाहता था कि इन ग्रन्थों का तत्त्वसार जनसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत किया जाए। चुनांचि ***" Islam – The Religion of Humanity "*** के यथोचित परिवर्धन के लिए सामग्री इन्हीं महान् ग्रन्थों के परिच्छेदों और लेखांशों द्वारा जुटाई गई है। पुस्तिका की बुनियादी रूप-रेखा को बदला नहीं गया है ,मूललेख के अनुभागों और परिच्छदों में मात्र परिवर्धन किया गया है ,हां ! बाज़ जगह नए अनुभागों का संकलन अनिवार्य जान उनको जोड़ दिया गया है। लेख का प्रवाह और संतुलन बनाए रखने केलिए कहीं कहीं संपादन कार्य ज़रूरी हो गया सो उसे प्रयोग में लाना पड़ा।"

भवदीय

हिन्दी अनुवादक

प्रथम संस्करण का प्राक्कथन

मूल अंग्रेज़ी लेखन :
लॉर्ड हैडले **(Lord Headley)**[1]

मौलाना मुहम्मद अली द्वारा रचित इस्लामी शिक्षाओं के इस सुन्दर सारांश को मैं ने अति आनन्द और रुचि के साथ पढ़ा। जिस अद्भुत योग्यता और दक्षता के साथ उन्हों ने हमारे धर्म के समस्त मौलिक सिद्धांतों को इस लघु पुस्तिका के कतिपय पृष्ठों में समो दिया है उस से मैं अत्यंत प्रभावित हुआ हूँ। अपनी सरल शैली और यथार्थता के कारण यह पुस्तिका सत्य के जिज्ञासुओं के लिए लाभप्रद सिद्ध होगी। आधुनिक परिवेश में इस्लाम का ऐसा संक्षिप्त परिचय बड़ा ही ज़रूरी बन जाता है। क्योंकि ज्ञानविज्ञान के प्रसार और धार्मिक विषयों के बुद्धिपूर्वक विवेचन के बावजूद हमारे इस देश में अब तक इस्लाम धर्म के प्रति एक शोचनीय अज्ञान पाया जाता है।

इस अज्ञानता का मुख्य कारण वे भ्रांतियां और गलत बयानियां हैं जो जानकार लोग जानबूझ कर फैलाते रहते हैं ,ताकि हमारे धर्म के प्रति पाश्चात्य विचारधारा सदा दूषित बनी रहे। इसी दुष्प्रचार के कुछ दुष्प्रमाण इन भ्रांतियों के रूप में सामने आये हैं : —यही कि मुसलमान हज़रत मुहम्मद[सल्ल.]

---

1. लॉर्ड हैडले (मृत्यु 1935 ई.), इंग्लैंड के हाउस ऑफ लार्ड्स के प्रमुख सदस्य थे। उन्हों ने 1913 ई. में हज़रत ख़वाजा कमाल उद्दीन[रअ] (1870ई.–1932ई.) के हाथ पर इस्लाम क़बूल किया। हज़रत ख़वाजा कमाल उद्दीन[रअ] यूरोप में इस्लाम के प्रथम धर्मप्रचारक थे ,उनका संबंध *अहमदिय्या अंजुमन इशाअत–ए–इस्लाम लाहौर* से था। लॉर्ड हैडले इंग्लैंड के विश्वविख्यात *वोकिंग मुस्लिम मिशन (Woking Muslim Mission)* के सिल्सिले में हज़रत ख़वाजा कमाल उद्दीन[रअ] के साथ जुड़े रहे। इस मिशन की स्थापना हज़रत ख़वाजा कमाल उद्दीन[रअ] ने 1912 ई. में की थी , और इसको *अहमदिय्या अंजुमन इशाअत–ए–इस्लाम लाहौर* के सदस्य चलाते थे।

की पूजा करते हैं ,एक से अधिक पत्नियां रखना इस्लाम धर्म का अनिवार्य अंग है ,या यही कि इस्लामी मान्यतानुसार स्त्रियों में आत्मा नाम की कोई चीज़ नहीं होती।

प्रत्यक्षतः यह बात अत्यन्त आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय प्रतीत होती है ,पर क्या करें वास्तविकता यही है कि आज भी इंग्लैंड के बहुत सारे लिखेपढ़े भद्र पुरुष यही समझते हैं कि हम लोग हज़रत मुहम्मद[सल्ल.] की पूजा करते हैं ,या हमारे लिए बहुपत्नीत्व अनिवार्य है ,या यह कि हमारी मान्यतानुसार स्त्रियों में आत्मा नहीं होती अतः वे स्वर्ग में प्रविष्ट न होंगी । ये कोरी निराधार भ्रांतियां हैं। हम केवल अल्लाह यानि एकमात्र परमेश्वर की उपासना करते हैं :

"(हे प्रभुवर !) हम केवल तेरी ही उपासना करते हैं और केवल तुझी से सहायता मांगते हैं" (कुर्आन 1 : 4)।

यह वाक्य इस्लामी नमाज़ का अभिन्न भाग है।

परमात्मा ने इतिहास के विभिन्न काल–चरणों में जिन पैग़म्बरों–अवतारों को प्रकट किया हम उनके बीच कोई भेदभाव नहीं करते। संपूण विश्व का परमात्मा एक ही है ,और हज़रत मुहम्मद[सल्ल.] उसके भेजे हुए आख़री पैग़म्बर (अ. *"ख़ातमन्नबीन"*) हैं।

हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल.] के शुभागमन से पहले सारे अरब में बहुपत्नीत्व का चलन अपनी चरमसीमा पर था ,हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल.] ने इस पद्धति को केवल एक मर्यादा प्रदान की ,और पुरुष केलिए पत्नियों की संख्या सुनिश्चित कर दी। अतएव आज आपको बहुत ही कम मुसलमान ऐसे मिलेंगे जिन की एक से अधिक पत्नियां हों। हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल.] ने *"पुत्री–हत्या"* ***(Female Infanticide)*** पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया ,जिसके फलस्वरूप सदियों पुरानी यह कुप्रथा सदासर्वदा के लिए समाप्त हो गई। मुस्लिम समाज में औरत को जो स्थान प्राप्त है वह ईसाई देशों की स्त्रियों से कहीं बेहतर है।

आशा है कि इस उपयोगी लघु पुस्तिका को सारी दुनिया में फैलाने के ठोस उपाय किये जाएं गे ,क्योंकि मुझे यक़ीन है कि इस पुस्तिका के पृष्ठों

का अध्ययन उन लोगों के मनमस्तिष्क में अलौकिक प्रकाश और अद्भुत संतोष जगा देगा ,जो इस्लाम के मंगलमय स्वरूप से अब तक अपरिचित हैं। उनका यह अज्ञान दो ही कारणों से है, एक सही जानकारी का अभाव ,दूसरे उन अल्पज्ञानी धर्मप्रचारकों की बातों पर कान धरना जो अपने सहधर्म के विषय में निराधार भ्रांतियां फैलाने से नहीं चूकते।

हैडले
(HEADLEY)

हमारे कुछ अन्य ख्यातिप्राप्त प्रकाशन

कुर्आन शरीफ़ की अंग्रेज़ी टीका

♦ "मौलाना मुहम्मद अली साहिब ने कुर्आन शरीफ़ का अंग्रजी में अनुवाद करके इस्लाम की जो महत्त्वपूर्ण सेवा की है उस की महत्ता को स्वीकार न करना मानो सूरज की रोशनी से इन्कार करना है। इस अनुवाद द्वारा न सिर्फ हज़ारों ग़ैरमुस्लिमों ने इस्लाम के शीतल आँचल में शरण ली बल्कि हज़ारों मुसलमान भी इस्लाम के और अधिक निकट आगए। जहाँ तक मेरा अपना संबंध है मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ कि यह अनुवाद गिनती की उन चन्द किताबों में से है जो चौदाह पंद्राह साल पहले ,जब मैं नास्तिकता और अधर्म रूपी अँधाकरों की गहराइयों में भटक रहा था ,मेरे लिए मार्गदीप बन कर आई और मुझे इस्लाम का मार्ग दिखाया।"

(मौलाना अब्दुल माजिद दर्याबादी[रब] ,कुर्आन शरीफ़ के मशहूर टीकाकार)

♦ "यह कुर्आन शरीफ़ का अंग्रेज़ी भाषा में प्रमाणिकतम अनुवाद है ,इस में ज्ञानप्रज्ञान से भरे हुए फुटनोट दर्ज हैं।"

(मौलाना मुहम्मद अली "जौहर" आफ़ ख़िलाफत मूवमेंट)

कुर्आन शरीफ़ की विश्वकोशीय उर्दू तफ़सीर (टीका)

♦ "(मौलाना मुहम्मद अली साहिब[रब] का) यह अनुवाद साम्प्रदायिक मान्यताओं की अभिव्यक्ति से लगभग रिक्त है ,मौलाना साहिब ने बड़ी सावधानी से अनुवादक की भूमिका निभाई है ..... उन्हों ने यह अनुवाद बड़ी श्रद्धा और आम जनमत को दृष्टि में रखते हुए किया है।"

(डा. सालिहा अब्दुल्हकीम शरफ उद्दीन की कृति *'कुर्आन हकीम के उर्दू तराजिम'*)

♦ "यह इतनी उच्च कोटि की तफ़सीर है कि शायद उर्दू भाषा का साहित्य रूपी ख़ज़ाना ऐसे कांतिमान रत्न दुर्लभता से भी न निकाल सके।" (मौलाना ज़फर अली खाँ[रब] ,संपादक अखबार *'ज़मीनदार'* लाहौर)

हदीस सार (Manual of Hadith)

♦ ".....इस तरह इस के विभिन्न अध्यायों में वे सारी हदीसें (और आयतें) आ गई हैं जिन की एक मुसलमान को अपने दैनिक जीवन में आवश्यकता पड़ सकती है ..... यह इतना बड़ा महाकार्य है जो एक *'अहमदी'* के हाथों सम्पन्न हुआ ,इस श्रेष्ठ कृति की नुकताचीनी या छिद्रान्वेषण कोरी मूर्खता है।" (मौलाना अब्दुल माजिद दर्याबादी[रब])

विषय-सूची

अनुवादक की ओर से	I
प्रथम संस्करण का प्राक्कथन	III
1. परिचय	**1**
नाम में विशेषता	1
इस्लाम शब्द का अर्थ	3
धर्म में नया भाव और अर्थ	5
2. इस्लाम की कुछ प्रमुख विशेषताएं	**6**
धर्म का उत्कृष्टतम रूप	8
मानवसमाज की एकता	9
ख़ातमन्नबीन याति अन्तिम पैग़म्बर[सल्ल]	10
एक ऐतिहासिक धर्म	11
3. इस्लाम के बुनियादी सिद्धांत	**13**
4. परमात्मा का अस्तित्व	**15**
परमात्मा का अस्तित्व	17
1. भौतिक जगत् की शहादत	18
2. इन्सानी जीवात्मा की गवाही	19
3. इलहाम तथा परमात्मा से सम्भाषण की गवाही	21
कुर्आन का स्वयं अपना उदाहरण	22
तौहीद यानि परमेश्वर का एकत्व	24

5. ईश्वरीय वह्य (Divine Revelation) 25
पैग़म्बरों–अवतारों पर विश्वास 27
ईश्वरीय वह्य का परिपक्व स्वरूप 28

6. मरणोपरांत जीवन 30
मरणोपरांत जीवन सांसारिक जीवन का संतत क्रम है 31
मरणोपरांत अवस्था मनुष्य की आध्यात्मिक अवस्था का प्रतिबिंब है 32
पारलौकिक जीवन में असीम उन्नति 35

7. ईमान (विश्वास) का अर्थ 35
फ़रिश्तों पर ईमान लाने का अर्थ 36
ईमान कर्म का आधार है 37
8. कर्म विषयक नियम 38
9. मनुष्य की अल्लाह के प्रति कर्तव्य 39
नमाज़ या उपासना 39
रोज़ा (उपवास) 42
हज्ज 44
उपासना का सार्थक स्वरूप 45

10. मनुष्य के मनुष्य के प्रति कर्तव्य 46
इस्लाम का अपूर्व बन्धुत्व 47
औरतों के अधिकार 48
प्रशासन 52
सच्चे इस्लामी प्रशासन की कुछ शिक्षाप्रद घटनाएं 54
जिहाद 56
ज़कात और दान 58
11. नैतिक शिक्षा में व्यापकता 62

मानवता का धर्म – इस्लाम

1. परिचय

नाम में विशेषता

"इस्लाम"— उस धर्म का नाम जिस की शिक्षा हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद[सल्ल.][1] ने दी। आपका शुभ आविर्भाव लग भग चौदह सौ वर्ष पूर्व[2] अरब देश में हुआ था। इस्लाम का उदय समस्त प्रमुख धर्मों के अन्त पर हुआ। पश्चिमी देशों में इस को आम तौर पर ***मोहैम्डनिज़म*** (Muhammadanism) के नाम से जाना जाता है ,लेकिन यह एक अपसंज्ञा है ,असली नाम ***'अल्–इस्लाम'*** है। क्योंकि मुहम्मद[सल्ल.]उस महान् पैग़म्बर का व्यक्तिगत नाम है जिन पर इस धर्म की शिक्षाओं का अवतरण ***वह्य*** (Revelation) द्वारा हुआ था। दरअसल पाश्चात्य विद्ववानों ने यह नाम ***बुधइज़म*** (Buddhism) ***कंफ़्यूशियनइज़म*** (Confucianism) ,***क्रिस्टिएनिटि*** (Christianity) सरीखे नामों की देखादेखी हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद[सल्ल.]के मंगलमय नाम पर रख लिया है। आश्चर्य की बात

---

1. صَلَّى اللهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ *"सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम" (=उन पर अल्लाह की अपार कृपा तथा शांति वर्षित हो)* का संक्षिप्त रूप ,जहाँ भी हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद का नाम आ जाये पूरा वाक्य पढ़ना चाहिये। (अनुवादक)

2. जन्म 571 ई. देहांत 632 ई.

यह कि स्वयं मुसलमान इस नाम से बिल्कुल अपरिचित हैं। इस्लाम के धर्मग्रन्थ ,कुर्आन शरीफ़ ,की शिक्षानुसार *"इस्लाम"* शब्द का अर्थ *"मानवजाति"* शब्द के अर्थ की तरह व्यापक और सार्वभौम है। इस्लाम का शुभारंभ हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद[सल्ल.] द्वारा नहीं हुआ ,बल्कि प्रत्येक पूर्ववर्ती पैग़म्बर–अवतार[1] का मौलिक धर्म इस्लाम ही था। हज़रत आदम (Adam) ,हज़रत नूह (Noah) ,हज़रत इब्राहीम (Abraham) ,हज़रत मूसा (Moses) और हज़रत ईसा (Jesus) (इन सब पर अल्लाह की अपार शांति वर्षित हो !) — सब का धर्म इस्लाम ही था। सिर्फ़ इन कतिपय महा पुरुषों का ही नहीं बल्कि उन सब पूर्ववर्ती पैग़म्बरों–अवतारों का मौलिक धर्म भी इस्लाम ही था जिन का प्रकटन संसार के किसी भी भूभाग में हुआ। مَامِنْ مَوْلُوْدٍاِلاَّيُوْلَدُعَلَى الْفِطْرَةِ *'संसार में जन्म लेने वाले प्रत्येक शिशु का प्राकृतिक धर्म (भी) इस्लाम ही है"* — यह हज़रत

---

1. " ***अवतार*** " शब्द को यों प्रतिपादित किया गया है :

" He is necessarily a man with a message." **(The Bhagavad Gita** , by S. Chidbhavananada, Sri Ramkrishna Mission, p. 45) ,

अर्थात् "अवतार वास्तव में एक मनुष्य ही है जो संसार में (प्रभु का संदेश) लेकर प्रकट होता है।"

इसी टीका में अन्यत्र श्री रामकृष्ण परमहंस के यह शब्द उद्धृत हैं :

" Incarnation is the man of authority sent by Iswara into society. He comes to put in order all lapses and deviations in the practice of dharma."

(ibid. p. 277) ,

अर्थात् "अवतार वह दिव्य प्राधिकारी है जिस को परमेश्वर स्वयं मानवसमाज में भेजता है। यह महापुरुष धर्म में उत्पन्न विकारों और दोषों को दूर कर इसे पुनः सुव्यवस्थित कर देता है।"

यही भाव " ***रसूल अथवा पैग़म्बर*** " शब्द का है। एक और हिन्दू विद्ववान के मतानुसार किसी भी ***अवतार*** को ***ईश्वर या भगवान*** समझना कोरी मूर्खता है :

"No man born is a God, whether he is Sri Krishna, Sri Rama or Jesus. They were simply the guiding human spirits of the time and hence,the ignorant man elevates them to godhead."

(Remedy the Frauds in Hinduism , by Kuttikhat Purushothama Chon, Bombay , 1991 AD , p. 34)

(अनुवादक)

पैग़म्बरश्री मुहम्मद[सल्ल] की *हदीस* (कथन) है। फल यह कि हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद[सल्ल] इस्लाम धर्म के प्रवर्तक नहीं ,बल्कि वास्तव में वे इस ईश्वरीय धर्म-व्यवस्था के अन्तिम प्रतिपादक मात्र हैं ,और यह कि आप के शुभागमन ने इस दिव्य व्यवस्था को इसकी पूर्ण अवस्था तक पहुंचा दिया। इधर कुर्आन शरीफ़ के कथनानुसार *"इस्लाम"* प्रत्येक इन्सान का प्राकृतिक धर्म है :

فِطْرَتَ ٱللَّهِ ٱلَّتِى فَطَرَ ٱلنَّاسَ عَلَيْهَا ۚ لَا تَبْدِيلَ لِخَلْقِ ٱللَّهِ ۚ ذَٰلِكَ ٱلدِّينُ ٱلْقَيِّمُ

"अल्लाह की बनाई हुई (मानव)-प्रकृति जिस के अन्तर्गत उस ने इन्सान को रचा — यही सच्चा और स्थाई धर्म है " (कुर्आन 30 : 30)।

अब चूंकि कुर्आन के कथनानुसार प्रत्येक राष्ट्र , प्रत्येक जाति , प्रत्येक काल में अल्लाह के भेजे हुए पैग़ब्बर-अवतार प्रकट होते रहे ,और उनका मौलिक धर्म अपने विशुद्ध रूप में इस्लाम ही था। इस दृष्टि से देखा जाए तो इस्लाम धर्म का वास्तविक उदय आदि काल में ,ठीक उसी क्षण हुआ था जब मानवजाति ने इस धरती पर पदार्पण किया था। धर्म के मौलिक सिद्धांत हर काल में एकसमान रहे हैं ,हां देश और काल की बदलती परिस्थितियों और आवश्यकताओं के उपलक्ष में धर्म की अमौलिक बातें अवश्य परिवर्तित होती रही हैं। अतः इस्लाम का अन्तिम रूप वही है जिस का अभ्युदय हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद[सल्ल] के शुभागमन द्वारा हुआ।

इस्लाम शब्द का अर्थ

अन्य धर्मों के विपरीत *"इस्लाम"* का पावन नाम उसके अनुयायिओं की कल्पना का परिणाम नहीं। बल्कि इस को यह नाम स्वयं इसके दिव्य ग्रन्थ कुर्आन शरीफ़ द्वारा प्राप्त हुआ है। जैसे फ़रमाया :

رَضِيتُ لَكُمُ ٱلْإِسْلَٰمَ دِينًا

"मैं ने (यानि अल्लाह नें) तुम्हारे लिए इस्लाम को धर्म के रूप में पसन्द किया" । (कुर्आन 5 : 3)

अन्यत्र फ़रमाया : إِنَّ ٱلدِّينَ عِندَ ٱللَّهِ ٱلْإِسْلَٰمُ

"निस्संदेह अल्लाह के निकट धर्म इस्लाम ही है" ।(कुर्आन 3 : 18)

इसके अतिरिक्त यह नाम स्वयं में एक सारगर्भित नाम है। इस्लाम शब्द में

उस धर्मव्यवस्था का संक्षिप्त ज्ञापण है जिस का यह वाचक है। इस्लाम शब्द का मौलिक अर्थ है *"शांति की स्थापना"*, अतः शांतिभाव इस्लाम का प्रधान लक्षण है। कुर्आन शरीफ़ के कथनानुसार *मुस्लिम या मुसलमान* वही है जस ने परमात्मा और मनुष्य अर्थात् स्रष्टा और सृष्टि दोनों के साथ शांति स्थापित कर ली हो। परमात्मा के साथ शांति स्थापित करने का अर्थ यही है कि इन्सान पवित्रता और भलाई के इस मूलस्रोत की आज्ञा और इच्छा के निमित अपना सर्वस्व समर्पित कर दे। और मनुष्य के साथ शांति स्थापित करने का मतलब मनुष्य मात्र के प्रति सद्भाव और उपकार का प्रदर्शन हो। कुर्आन शरीफ़ ने इन दोनों भावों को अति संक्षिप्त किन्तु बड़े सुन्दर ढंग से यों प्रतिपादित किया है :

بَلَىٰ مَنْ أَسْلَمَ وَجْهَهُۥ لِلَّهِ وَهُوَ مُحْسِنٌ فَلَهُۥٓ أَجْرُهُۥ عِندَ رَبِّهِۦ
وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُونَ ﴿١١٢﴾

"हां ! जिस ने अपना आप पूर्णतया अल्लाह को समर्पित कर दिया , और वह परोपकारी भी है , तो उसका कर्मफल उसके रब के पास है और इन को कोई भय नहीं और न वे दुखी होंगे"। (कुर्आन 2 : 112)

कुर्आन शरीफ़ के अनुसार यही — केवल यही — मुक्ति ,और यही मोक्ष (Salvation) है। और चुंकि मुसलमान एक संपूर्ण शांतिमय जीवन जीता है , अतः उसे मनोशांति और आत्मसंतोष का दिव्य वरदान भी प्राप्त होता है (कुर्आन 16 : 106)। एक मुसलमान जब दूसरे मुसलमान से मिलता है तो *'सलाम'* (यानि *सुख–शांति* की दुआ) से उसका अभिवादन करता है ,स्वर्ग के निवासियों के यहां भी यही अभिवादन प्रचलित होगा :

وَتَحِيَّتُهُمْ فِيهَا سَلَٰمٌ

"और वहां (भी) उनका अभिवादन 'सलाम'(यानि सुख–शांति की दुआ) ही होगा"। (कुर्आन 10 : 10)

इतना ही नहीं , बल्कि इस्लाम जिस स्वर्ग का वर्णन करता है उस में *'शांति शांति'* के अतिरिक्त और कोई आवाज़ सुनाई न देगी :

لَا يَسْمَعُونَ فِيهَا لَغْوًا وَلَا تَأْثِيمًا ﴿٢٥﴾ إِلَّا قِيلًا سَلَٰمًا سَلَٰمًا ﴿٢٦﴾

"वे वहां कोई फ़जूल बात न सुनें गे ,और न कोई पापयुक्त बात — बस एक ही बात (सर्वत्र सुनाई देगी) — शांति ! शांति !"

(कुर्आन 56 : 25–26)

कुर्आन शरीफ़ ने अल्लाह का नाम اَلسَّلَامُ *"अल्–सलाम"* और اَلْمُؤْمِنُ *"अल्–मुअमिन"* (यानि *शांतिस्रोत* एवं *शांतिदाता*) भी आया है (59 : 23)। और वह परम लक्ष्य या आखिरी मंज़िल जिस की ओर इस्लाम मार्गदर्शन करता है उसको भी कुर्आन शरीफ में دَارُ السَّلَم *'दारुस्सलाम'* यानि *शांति–धाम* की पावन संज्ञा दी गई है :

وَاللّٰهُ يَدْعُوٓا إِلَىٰ دَارِ السَّلَمِ

"और अल्लाह (सब को) 'दारुस्सलाम' यानि शांति–धाम की ओर बुलाता है" (10 : 25)।

फल यह कि *'शांति'* इस्लाम–धर्म की आत्मा है ,और इस से जो कुछ उत्पन्न होता है वह भी शांति ही है। अतः इस्लाम साक्षात शांति प्रधान धर्म है।

धर्म में नया भाव और अर्थ

इस्लाम ने धर्म को एक नया भाव ,एक नया अर्थ प्रदान किया। प्रथमतः यहां धर्म कोई राद्धांत ,मतांधता या Dogma नहीं कि उस को माने बिना स्थाई यातना से मुक्ति न हो। यहां धर्म एक ऐसा विज्ञान (Science) है जिस की नीव मानवजाति के सार्वभौम अनुभव पर है। फलतः इस्लामानुसार *"वह्य"* (Divine Revelation) अर्थात् परमात्मा का मनुष्य से वार्तालाप — यह दिव्य वरदान मनुष्य के आध्यात्मिक क्रमविकास के लिए परमावश्यक है। *"वह्य"* (Divine Revelation) प्रभु का एक ऐसा विश्वव्यापी वरदान है कि जिस का अनुभव संपूर्ण मनुष्यजाति को प्राप्त है। अपनी निम्न अथवा अपक्व रूप में यह दिव्य वरदान मनुष्य को उसके सच्चे स्वप्नों एवं दिव्य–दर्शनों के रूप में उपलब्ध होता है। इसका परिपक्व अथवा उत्तम रूप वही है जिसका अनुभव संसार के समस्त पैग़म्बरों–अवतारों को हुआ ,जिसके अधीन उन्हों ने (अपने अपने देश–काल के अनुरूप) धार्मिक सत्यों और धर्म–विधानों का प्रतिपादन किया। द्वितीय ,धर्म के वैज्ञानिक स्वरूप को बनाए रखने केलिए इस्लाम अपने समस्त

सिद्धांतों को इन्सानी जीवन में कार्यान्वित करता है। आध्यात्मिक उन्नति और विकास के ऊँचे दरजे हासिल करने केलिए ही उसने भक्त के विश्वास *(अ.'ईमान')* संबंधी प्रत्येक नियम और सिद्धांत को व्यवहार का एक आधारभूत साधन बना दिया।

तृतीय, इस्लाम ने धर्म का कार्यक्षेत्र केवल परलोक तक सीमित नहीं रखा , इसकी प्रथम एवं प्रमुख संबद्धता सांसारिक जीवन के प्रति ही है, क्योंकि संसार में नियम और संयम युक्त पवित्र जीवन व्यतीत करने से ही मनुष्य को एक सर्वोच्च शाश्वत जीवन की चेतना प्राप्त होती है। इसी लिए कुर्आन शरीफ में जहां प्रभु-संसर्ग के साधनों और विधियों की चर्चा है वहीं भौतिक समस्याओं का विवेचन भी है। मनुष्य के सुखद जीवन के लिए जिन सांसारिक मुद्दों का समाधान ज़रूरी था उन का हल कुर्आन शरीफ़ में वर्णित है। यह व्यक्ति ,समाज ,राष्ट्र तथा संपूर्ण मनुष्यजाति को उसके कल्याण और विकास का मार्ग दिखाता है। इस्लाम मनुष्य को उसके पारलौकिक जीवन के लिए अवश्य तैयार करता है ,लेकिन इस सांसारिक जीवन के प्रति उदासीनता या पलायनवादी दृष्टिकोण अपनाए बिना ही।

2. इस्लाम की कुछ प्रमुख विशेषताएं

सभी पैग़म्बरो-अवतारों की सत्यता में विश्वास

इस्लाम की परम विशेषता यह है कि यह अपने अनुयायिओं के लिए इस बात पर विश्वास लाना अनिवार्य ठहराता है कि वे उन सभी महा धर्मों को ईश्वर-प्रदत्त मानें जो इस्लाम से पहले संसार में प्रकट हुए। इस तरह इस्लाम विश्व के समस्त धर्मों के बीच शांति ,एकता और सौहार्द की नींव रख देता है। कुर्आन के कथनानुसार संसार का एक भी राष्ट्र या एक भी जाति ऐसी नहीं कि जिस में परमात्मा का भेजा हुआ कोई न कोई पैग़म्बर या अवतार प्रकट न हुआ हो । अल्लाह फरमाता है :

وَإِن مِّنْ أُمَّةٍ إِلَّا خَلَا فِيهَا نَذِيرٌ

" कोई भी जाति अथवा राष्ट्र ऐसा नहीं कि जिस में (प्रभु का भेजा हुआ) सचेतकर्ता न गुज़रा हो ।" (कुर्आन 35 : 24)।

यह भी कहा गया है कि कुर्आन शरीफ़ में वर्णित पैग़म्बरों–अवतारों के अलावा भी अनेकों पैग़म्बर–अवतार इस दुनिया में प्रकट हो चुके हैं :

وَرُسُلًا قَدْ قَصَصْنَاهُمْ عَلَيْكَ مِن قَبْلُ وَرُسُلًا لَّمْ نَقْصُصْهُمْ عَلَيْكَ

"और कुछ पैग़म्बर–अवतार हैं जिन की चर्चा हम तुझ से पहले कर चुके हैं और कुछ पैग़म्बर–अवतार हैं जिन की चर्चा हम ने तुझ से नहीं की"।

(कुर्आन 4 : 164)

"सब कौमों और राष्ट्रों में अल्लाह के भेजे हुए पैग़म्बर–अवतार प्रकट हुए" — इस तथ्य को कुर्आन शरीफ़ ने केवल एक सिद्धांत या नज़रीया (Theory) के रूप में ही प्रस्तुत नहीं किया ,बल्कि इस से भी एक कदम आगे बढ़कर उसने अपने अनुयायिओं के लिए यह बात अनिवार्य ठहरा दी कि वे बिना किसी भेदभाव के सभी पूर्ववर्ती पैग़म्बरों–अवतारों की सत्यता पर विश्वास लाएं। चुनांचि मुसलमानों की ज़ुबान से कहलवाया है :

لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ أَحَدٍ مِّنْهُمْ

"हम उन (सभी पैग़म्बरों–अवतारों) में से किसी में कोई भेदभाव या अन्तर नहीं करते" (कुर्आन 2 : 136)।

لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ أَحَدٍ مِّن رُّسُلِهِ

"हम उसके (यानि अल्लाह के) भेजे हुए पैग़म्बरों–अवतारों में कोईभदभाव नहीं करते" (कुर्आन 2 : 285)।

यों तो इस्लाम के विश्वास संबंधी सिद्धांतों का संक्षिप्त सारांश इस्लामी *कलमा* के इन दो वाक्यांशों—لَا إِلَٰهَ إِلَّا اللَّهُ *ला इलाह इल्ल–ल्लाहु* (*यानि अल्लाह के सिवा और कोई ईश्वर नही*) और مُحَمَّدٌ رَّسُولُ اللَّهِ *मुहम्मदु–ररसूलु–ल्लाह* (यानि *मुहम्मद*ﷺ *अल्लाह के भेजे हुए पैग़म्बर हैं*) —में आ जाता है , किन्तु हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मदﷺ पर ईमान लाने वाला

आप से आप संसार के सभी पूर्ववर्ती पैग़म्बरों–अवतारों की सत्यता पर भी विश्वास ले आता है ,चाहे उनका नाम कुर्आन शरीफ़ में वर्णित हो या न वर्णित हो। फल यह कि इस्लाम एक ऐसी सार्वभौम व्यापकता का दावेदार है जिस की अन्य धर्म कल्पना भी नहीं कर सकते। यह एक ऐसे सुविशाल बंधुत्व एवं भाईचारे की नींव रखता है जो स्वयं मानवजाति की भांति विशाल और विश्वव्यापी है।

धर्म का उत्कृष्टतम रूप

इस्लाम का परम उद्देश्य केवल उस सत्य का विश्वव्यापी प्रचार मात्र नहीं , जिसे इस्लाम के आगमन से पहले राष्ट्रों के एक दूसरे से अलग थलग होने के कारण दुनिया के सामने प्रस्तुत न किया जा सका। बल्कि इस का एक प्रमुख उद्देश्य उन गलतियों और भ्रांतियों का सुधार भी है जो कालांतर में पूर्ववर्ती धर्मों में प्रवेश पा गई थीं। इस्लाम का दूसरा काम सत्य और असत्य को प्रभिन्न करना ,तथा उन तथ्यों और सच्चाइयों को दुनिया के सामने पेश करना भी था जो देश और काल की विशेष अथवा प्रारंभिक स्थितियों के कारण पहले पेश न की जा सकती थीं। इस्लाम की परम विशेषता उन विभिन्न दिव्य सत्यों और तथ्यों को एक ही किताब (ग्रन्थ) में एकत्र करना है जो पूर्वकालीन पैग़म्बरों–अवतारों पर उनकी जातियों के मार्गदर्शन हेतु *वह्य* (Revelation) द्वारा प्रकट हुए थे। सब से बढ़ कर यह कि इस में उन्नति और विकास के पथ पर निरंतर अग्रसर मानवसमाज की समस्त नैतिक और आध्यात्मिक ज़रूरतों को पूरा करने की पूर्ण शक्ति मौजूद है। अतः इस्लाम प्रभु–इच्छा अथवा प्रभु–आज्ञा का अन्तिम एवं उत्कृष्टतम रूप है। कुर्आन शरीफ़ फ़रमाता है :

اَلْيَوْمَ اَكْمَلْتُ لَكُمْ دِينَكُمْ وَاَتْمَمْتُ عَلَيْكُمْ نِعْمَتِى
وَرَضِيتُ لَكُمُ الْاِسْلَامَ دِينًا

"आज मैं ने तुम्हारे लिए तुम्हारा धर्म संपूर्ण कर दिया और तुम पर अपना अनुग्रह पूर्ण कर दिया , और तुम्हारे लिए इस्लाम को धर्म के रूप में पसन्द किया"। (कुर्आन 5 : 3)

इसी संदर्भ में कुर्आन शरीफ़ को — صُحُفًا مُّطَهَّرَةً ﴿٢﴾ فِيهَا كُتُبٌ قَيِّمَةٌ ﴿٣﴾
अर्थात् ,"*वे पवित्र पृष्ठ जिन में समस्त स्थाई ग्रन्थ (समाविष्ट) हैं*" (98 : 2, 3) — कहा गया है। यानि कुर्आन शरीफ में वे सब उपयुक्त निर्देश मौजूद हैं जो मनुष्य के मार्गदर्शन के लिए ज़रूरी हैं ,चाहे उनका प्रकटन पूर्ववर्ती दिव्य ग्रन्थों में हुआ हो या न हुआ हो।

मानवसमाज की एकता

मानवसमाज के सुखद जीवन एवं आत्मोन्नति के लिये पैग़म्बरों और अवतारों के आविर्भाव का जो विश्वव्यपी सिलसिला शुरू हुआ था ,उस के अधीन हर कौम और हर राष्ट्र में पैग़म्बर और अवतार प्रकट होते रहे। इस अद्भुत सार्वभौम तथ्य का उद्घाटन कुर्आन शरीफ़ द्वारा ही हुआ है। देखा जाए तो पैग़म्बरों–अवतारों का आविर्भाव एक विश्वव्यापी वास्तविकता है। लेकिन यह एक क़ौमी या राष्ट्रीय व्यवस्था थी। क्योंकि हर पूर्ववर्ती पैग़म्बर–अवतार का सन्देश उसके देश–काल तक ही सीमित होता। इस दिव्य व्यवस्था के अन्तिम चरण का स्वाभाविक तक़ाजा यही था कि अब एक ऐसे पैग़म्बर–अवतार को नियुक्त किया जाता जिस का मिशन सार्वभौम हो ,ताकि संसार की समस्त कौमों और राष्ट्रों की अभीष्ट एकता पूर्णत्व को प्राप्त हो जाती। इसी लिए कुर्आन शरीफ में हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद[सल्ल.] के पावन मिशन के लक्ष्य का प्रतिपादन इन शब्दों में हुआ है :

تَبَارَكَ ٱلَّذِى نَزَّلَ ٱلْفُرْقَانَ عَلَىٰ عَبْدِهِۦ لِيَكُونَ لِلْعَٰلَمِينَ نَذِيرًا

"अल्लाह बरकत वाला है जिस ने अपने बन्दे (=मुहम्मद) पर यह फ़ुर्क़ान (=सत्य और असत्य को प्रभिन्न करने वाला कुर्आन शरीफ़) उतारा ताकि वह दुनिया के समस्त राष्ट्रों के लिए सचेतकर्ता हो"। (कुर्आन 25 : 1)

قُلْ يَٰٓأَيُّهَا ٱلنَّاسُ إِنِّى رَسُولُ ٱللَّهِ إِلَيْكُمْ جَمِيعًا

"(हे मुहम्मद !) कह दे : हे संसार वासियों ! मैं तुम सब की ओर अल्लाह का पैग़म्बर यानि संदेशवाहक हूँ "। (कुर्आन 7 : 158)

وَمَآ أَرْسَلْنَٰكَ إِلَّا كَآفَّةً لِّلنَّاسِ

"और (हे नबी !) हम ने तुझे संपूर्ण मानवजाति के कल्याण हेतु भेजा

है" । (कुर्आन 34 : 28)

इस तरह एक सर्वकालीन एवं सार्वभौम पैग़म्बर ने समस्त पूर्वव पैग़म्बरा-अवतारों का स्थान ले लिया। देश और काल ,ऊँच और नीच ,रं और भाषा रूपी सभी झगड़े समाप्त हो गए। विश्वव्यापी एकता और भाईच की सुखद घोषणा का ज्ञापण इस आधारभूत तथ्य द्वारा किया गया :

كَانَ ٱلنَّاسُ أُمَّةً وَاحِدَةً

"(याद रखो !) समूचा मानवसमाज वास्तव में एक ही जाति है"।

(कुर्आन 2 : 213)

ख़ातमन्नबीन यानि अन्तिम पैग़म्बर[सल्ल]

यहां यह बता देना भी ज़रूरी है कि मानवसमाज की एकता के इस पावन लक्ष्य की प्राप्ति उस वक़्त तक सम्भव ही नहीं जब तक भावी नबियों और रसूलों के प्रादुर्भाव का द्वार सदा सर्वदा केलिए बन्द न कर दिया जाए। क्योंकि यदि विश्वव्यापी पैग़म्बर[सल्ल] के शुभागमन के पश्चात् कोई नया पैग़म्बर या अवतार आजाए तो इन्सानी एकता और भाईचारे की वह मंगलमय नींव चकनाचूर हो जाए गी जिस का निर्माण सार्वभौम पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद[सल्ल] द्वारा सम्भव हो पाया था। यही वजह है कि कुर्आन शरीफ़ में इस सार्वभौम पैग़म्बर[सल्ल] को خَاتَمَ ٱلنَّبِيِّـۧنَ *"ख़ातमन्नबीन"* यानि *आख़री पैग़म्बर* की सम्मानजनक उपाधि प्रदान की गई है :

رَّسُولَ ٱللَّهِ وَخَاتَمَ ٱلنَّبِيِّـۧنَ

"(मुहम्मद) अल्लाह का रसूल (=पैग़म्बर) और नबियों का ख़ातम यानि अन्तिम नबी है" (कुर्आन 33 : 40)।

स्मरण रहे कि पूर्वकाल में एक नबी ,पैग़म्बर या अवतार का प्रादुर्भाव सिर्फ इस लिए होता था कि वह अपनी जाति या राष्ट्र को वह मार्ग बताए जिस पर चलकर वे लोग अपने पालनहार-स्रष्टा से सम्पर्क स्थापित कर सकें। हजरत पैग़म्बरश्री मुहम्मद[सल्ल] द्वारा यह महा उद्देश्य भी अपनी चरम सीमा को प्राप्त हुआ ,क्योंकि आप की लाई हुई किताब ने न सिर्फ समकालीन कौमों और राष्ट्रों की आवश्यकताओं को पूरा किया वरन् इसमें क़यामत तक आने

वाली पीढ़ियों की ज़रूरतों को पूरा करने की भी पूर्ण क्षमता मौजूद है। कुर्आन शरीफ़ ने इस तथ्य को एक प्रत्यक्ष दावा के रूप में भी प्रतिपादित किया है (देखें कुर्आन 5 : 3 , यह आयत ऊपर नक़ल की जा चुकी है)। इस तरह का दावा सिवाय इस्लाम के और किसी धर्म में मौजूद नहीं। धर्म के पूर्णत्व को प्राप्त हो जाने के बाद अब किसी नए धर्म अथवा धर्मप्रवतर्क के प्रकटन की आवश्यकता शेष नहीं रही।[1]

एक ऐतिहासिक धर्म

मैं इस्लाम की एक और विशेषता का उल्लेख इस पुस्तिका के प्रारंभिक भाग में ही कर देना चाहूँ गा। निस्संदेह इस्लाम एक ऐतिहासिक धर्म है और इसका पवित्र प्रवर्तक भी एक महान ऐतिहासिक व्यक्तित्व है —इस वास्तविकता को किसी प्रकार झुठलाया नहीं जासकता। यह वह तथ्य है जिस को इस्लाम के कटुतम आलोचक भी स्वीकारते हैं। हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल.] के पवित्र जीवन की हर छोटी बड़ी घटना को इतिहास के प्रकाश में साफ निहारा जा सकता है। और कुर्आन शरीफ़ —जो इस्लाम के समस्त आध्यात्मिक एवं सामाजिक नियमों का मूलस्रोत है ,उसके बारे में एक प्रमुख पाश्चात्य विद्वान बॉसवर्थ समिथ (Bosworth Smith) की टिप्पणी यों है :

> "....a book absolutely unique in its origin, in its preservation.....on the substantial authenticity of which no one has ever been able to cast a serious doubt."
>
> अर्थात् ,"..... एक ऐसा ग्रन्थ जो अपनी मौलिकता और अपने परिरक्षण में एकदम अद्वितीय है .... इस की अंतर्वस्तु इतनी विशुद्ध ,इतनी

---

1. इसी संदर्भ में हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद[सल्ल.] के ये दो कथन द्रष्टव्य हैं :

"मुझे पांच चीज़ें प्रदान की गईं जो मुझ से पहले किसी को प्रदान न हुईं। प्रत्येक पूर्ववर्ती पैग़म्बर-अवतार विशेष रूप से अपनी ही कौम की और नियुक्त किया जाता था इसके विपरीत मैं हर गोरे और काले की ओर नियुक्त किया गया हूँ ....."।

(*मुस्लिम* 4 : 1 हदीस 3)

"मुझे पांच बातों में अन्य पैग़म्बरों पर प्रधानता दी गई है ..... (इन में की अन्तिम दो बातें ये हैं) मुझे सब लोगों की ओर पैग़म्बर बना कर भेजा गया ,और मेरे द्वारा पैग़म्बरों का आना समाप्त किया गया है यानि मैं आखरी नबी हूँ"। (*वही* , हदीस 5)

अपरिवर्तित है ,कि इस की प्रमाणिकता पर आज तक कोई आदमी किसी प्रकार की कोई विशेष शंका प्रकट नहीं कर पाया है"।

('*Muhammad and Muhammadanism*', London, 1889)

सर विल्यम मूयर (Sir William Muir ,1819-1905 AD) जैसा कटुतम-आलोचक भी यह कहने पर मजबूर है कि :

"There is probably in the world no other work which has remained twelve centuries with so pure a text." (*Life of Muhammad*)

अर्थात् ," *संभवतः कुर्आन शरीफ़ ही विश्व का वह एकमात्र ग्रन्थ है जिसका मूलपाठ बारह शताब्दियां बीत जाने के बाद भी विकार , प्रदोष या परिवर्तन से सर्वथा सुरक्षित रहा*"।

और फिर वॉन होमर (Von Hommer) के साथ सहमति प्रकट करते हुए कहता है :

"We hold the Quran to be as surely Muhammad's word as the Muhammadans hold it to be the word of God."

अर्थात् ," *जिस पूर्ण विश्वास के साथ मुसलमान कुर्आन शरीफ़ को अल्लाह की किताब मानते हैं उसी पूर्ण विश्वास के साथ हम इसे मुहम्मद के मुखकमल से मुखरित उनकी वाणी मानते हैं।*"

आध्यात्मिक और नैतिक उन्नति और विकास के लिए मानवसमाज को जिस गार्गदर्शन की आवश्यकता है वह सब कुर्आन की शताब्दियों से सुरक्षित ईश्वाणी और हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल] के आदर्श व्यवहार (سُنّت ,*सुन्नत*) में उपलब्ध है। हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल] की इस पावन سُنّت *'सुन्नत'* ,यानि आदर्श व्यवहार में ऐसे ऐसे उच्च कोटि के नियम और शिक्षाएं हैं ,जो जीवन के सभी क्षेत्रों में मनुष्य का पर्याप्त मार्गदशर्न करते हैं। मार्गदर्शन के इन दो मूलस्रोतों को अंगीकार कर मुसलमान के मन में यह संतोषजनक एवं पूर्ण विश्वास जाग उठता है ,कि उस ने किसी भी ऐसी सत्यता का इनकार नहीं किया जिसको किसी पूर्ववर्ती देश या जाति पर *वह्य* द्वारा प्रकट किया जा चुका है, और यह भी कि उसने किसी ऐसी अच्छाई या सद्गुण का अनादर नहीं किया जो किसी भी नेक पुरुष के जीवन में विद्यमान है। तात्पर्य यह कि मुसलमान न

सिर्फ संसार के समस्त दिव्य ग्रन्थों की मूल सत्यता पर विश्वास लाता है ,और समस्त राष्ट्रों और कौमों की पुण्यात्माओं को सादर कबूल करता है ,बल्कि पूर्ववर्ती दिव्य वाणियों में पाई जाने वाली उन सभी स्थाई सत्यताओं का भी अनुसरण करता है जिनको अल्लाह की अन्तिम किताब (कुर्आन शरीफ) में परिपक्व एवं विस्तृत रूप से पुनः प्रतिपादित कर दिया गया है। हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल] के अनुपम चरित्र का अनुसरण कर मुसलमान एक तरह से संसार की सभी पुण्यात्माओं की अच्छाइयों और सद्गुणों को आत्मसात कर लेता है। क्योंकि हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल] के संपूर्ण आदर्श में समस्त मानवीय सद्गुणों का सुखद समावेश है।

3. इस्लाम के बुनियादी सिद्धांत

इस्लाम के प्रमुख एवं आधारभूत सिद्धांतों को कुर्आन शरीफ़ के आरंभ में ही प्रतिपादित कर दिया गया है ,फ़रमाया :

ذَٰلِكَ ٱلْكِتَٰبُ لَا رَيْبَ ۛ فِيهِ ۛ هُدًى لِّلْمُتَّقِينَ ۝٢ ٱلَّذِينَ يُؤْمِنُونَ بِٱلْغَيْبِ

وَيُقِيمُونَ ٱلصَّلَوٰةَ وَمِمَّا رَزَقْنَٰهُمْ يُنفِقُونَ ۝٣ وَٱلَّذِينَ يُؤْمِنُونَ بِمَآ أُنزِلَ

إِلَيْكَ وَمَآ أُنزِلَ مِن قَبْلِكَ وَبِٱلْءَاخِرَةِ هُمْ يُوقِنُونَ ۝٤

"यह किताब ,इस में कोई संदेह नहीं ,कर्तव्यनिष्ठों के लिए मार्गदर्शन है जो परोक्ष पर विश्वास लाते हैं ,और नमाज़ कायम करते हैं ,और जो कुछ हम ने उन्हें दिया है उस में से व्यय करते हैं। और जो उस पर विश्वास लाते हैं जो तेरी ओर उतारा गया और जो तुझ से पहले उतारा गया , और वे आख़िरत पर यक़ीन रखते हैं।" (कुर्आन 2 : 2–4)

इन आयतों में उन मूलभूत सिद्धांतों की ओर संकेत है जिन का मानना कुर्आन शरीफ़ के अनुयायिओं के लिये अनिवार्य है। यहाँ जिन पाँच बुनियादी बातों का उल्लेख है उन में की तीन का सीधा संबंध मनुष्य के विश्वास से है ,और अन्य दो का संबंध उसके व्यवहार से। अर्थात् तीन का संबंध आस्था

से है और दो का कर्म से। इस से पहले कि मैं इन बातों पर अलग अलग बहस करूँ ,यह बता देना ज़रूरी समझता हूँ कि इस्लाम धर्म में ,जैसा कि इन आयतों से ज़ाहिर है ,मात्र अस्था का बिना कर्म के कोई महत्त्व नहीं।

اَلَّذِينَ ءَامَنُوا وَعَمِلُوا الصَّٰلِحَٰتِ

अर्थात् ,"वे लोग जो विश्वास लाते और अच्छे कर्म करते हैं"

कुर्आन शरीफ़ ने अनेकशः इसी वाक्यांश द्वारा धर्मपरायण लोगों को परिभाषित किया है। सही मान्यता एक उत्तम बीज के समान है ,लेकिन यह अच्छे वृक्ष में सिर्फ उसी वक्त परिवर्तित होगा जब इसे धरती से अनुकूल भोजन प्राप्त होगा। आस्था रूपी बीज का रोपन धर्मी की हृदय रूपी धरती में होता है जिसको कर्म रूपी भोजन पल्लवित करता है। उपर्युक्त पांच मौलिक सिद्धांतों के बारे में एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य दृष्टिगत रखना ज़रूरी है। वह यह कि संपूर्ण मानवसमाज ने इन मौलिक सिद्धांतों को किसी न किसी रूप में अवश्य स्वीकारा है।

उपरोक्त आयतों में वर्णित पांच बुनियादी सिद्धांत ये हैं : (1) اِيْمَان بِالْغَيْب *ईमान बिल्-ग़ैब* यानि *परोक्ष पर विश्वास*। सब से बड़ी अनदेखी सत्ता परमात्मा है अर्थात् *परमात्मा की सत्ता पर ईमान लाना* ,(2) ईश्वर की وَحْى *वह्य* (Revelation) पर विश्वास ,(3) اٰخِرَة *आख़िरत* यानि आगामी जीवन पर ईमान। और व्यवहार के रूप मैं : (4) नमाज़ या प्रार्थना — जिस से उपासक के मन में ईश्वर के प्रति श्रद्धा और प्रेम जागता है ,और (5) *ज़कात* या दान — दान को इस्लाम ने उसके व्यापक अर्थ और स्वरूप में प्रस्तुत किया है ,इस के अन्तर्गत वे सब कर्तव्य आ जाते हैं जिन का प्रदर्शन ईश्वर और मनुष्य के प्रति ज़रूरी है। आस्था और व्यवहार संबंधी ये पांच सिद्धांत दुनिया की सभी जातियों को मान्य हैं। यही वे सामान्य सिद्धांत हैं जिन को समस्त धर्मों का आधार कहा जा सकता है। वास्तविकता तो यह है कि ये पांच मौलिक सिद्धांत मानो एक प्रकार से स्वयं मानव-प्रकृति पर ही अंकित हैं। अब मैं इन सिद्धांतों का एक एक कर वह ब्योरा प्रस्तुत करूँगा जो स्वयं कुर्आन शरीफ़ ने वर्णित है।

4. परमात्मा का अस्तित्व

इस्लाम में परमात्मा का अस्तित्व

आस्था संबंधी तीन मौलिक सिद्धांतों में प्रथम सिद्धांत परमात्मा पर विश्वास है। इन्सान उस सुदूरतम पुराकाल से ही ,जहां तक मानव-इतिहास हमें ले जा सकता है ,एक अतिमानवीय (Superhuman)शक्ति पर विश्वास धरता चला आया है। किन्तु इतिहास के विभिन्न कालों में ,विभिन्न राष्ट्रों और जातियों में ईश्वर की सत्ता के बारे में बहुविध धारणाएं प्रचलित रही हैं। इस्लाम ने आरंभ में ही परमात्मा के एक ऐसे व्यक्तित्व ,एक ऐसे स्वरूप को प्रस्तुत किया जो समस्त राष्ट्रीय अथवा जातीय देवी-देवताओं से प्रभिन्न और सर्वोच्च है। इस्लाम का अल्लाह किसी जाति विशेष या राष्ट्र विशेष का परमात्मा नहीं ,कि उसकी समस्त कृपादृष्टियां सिर्फ़ उसी जाति या राष्ट्र पर केन्द्रित हो कर रह जाएं। कुर्आन शरीफ़ के आरंभिक शब्दों में ही उसे رَبُّ الْعَالَمِيْن *"रब्बुल्-आलमीन"* (=*समस्त लोकलोकांतरों का पालनहार-स्रष्टा*) के रूप में प्रस्तुत किया गया है (देखो कुर्आन 1 : 1)।*"रब्बुल्-आलमीन"* कह कर इस्लाम ने जहां परमात्मा का सर्वोत्तम स्वरूप पेश कर दिया , वहीं मानवीय भाईचारे के दायरे को भी इतना व्यापक और सार्वभौम बना दिया कि उस के भीतर दुनिया की समस्त जातियां और राष्ट्र आ जाते हैं। इस प्रकार इस्लाम मनुष्य के दृष्टिकोण ,उसकी संवेदना और साहनुभूति में एक अद्भुत एवं विश्वव्यापी विशालता उत्पन्न कर देता है।

कुर्आन शरीफ़ में परमात्मा के जिन सद्गुणों और विशेषणों को प्रतिपादित किया गया है उन में *रहमत* यानि दयालुता को सर्वोपरी स्थान हासिल है। कुर्आन शरीफ़ का प्रत्येक अध्याय بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ *बिस्मिल्लाहि-रहमानि-रहीम* (=*अल्लाह के नाम से , जो अपार दयालु, सतत् कृपालु है*) से शुरू होता है जिस में प्रभु की असीम *रहमत (दयालुता,*

कृपा) को अभिव्यक्त करने के लिए उसके दो नाम اَلرَّحْمٰنِ *"अल्–रहमान" (=अपार दयालु)* और اَلرَّحِيمِ *"अल्–रहीम" (=सतत् कृपालु)* प्रयुक्त हुए हैं। जिन का अंग्रेज़ी अनुवाद "Beneficent" और "Merciful" किया जाता है। दुर्भाग्यवश अंग्रेज़ी भाषा के इन शब्दों से पाठक को परमात्मा की अगाध दयालुता का केवल अपूर्ण एवं आंशिक परिचय ही मिल पाता है। कुर्आन शरीफ़ में अल्लाह स्वयं फ़रमाता है :

وَرَحْمَتِي وَسِعَتْ كُلَّ شَيْءٍ

"मेरी रहमत ने हर चीज़ को घेर रखा है" (कुर्आन 7 : 156)।

परमात्मा के व्यक्तित्व का ऐसा दयामय चित्रण करने वाले पैग़म्बर को ठीक ही رَحْمَةً لِّلْعَٰلَمِينَ *"रहमतन लिल्आलमीन" {=समस्त राष्ट्रों के लिए रहमत* (कुर्आन 21 : 107)} की अपूर्व एवं सम्मानजनक उपाधि प्रदान की गई है। इसके अतिरिक्त यह कि परमात्मा ही समस्त लोकलोकांतरों का एकमात्र स्रष्टा है। परमात्मा की रचनाशक्ति के इनकार से उसका संपूर्ण व्यक्तित्व महत्ता और श्रेष्ठता के भाव से वंचित हो जाता है। इस संदर्भ में कुर्आन शरीफ़ का यह प्रसंग प्रस्तुत है जिस में परमात्मा के व्यक्तित्व और उसके सद्गुणों का अति सुन्दर चित्रण है :

هُوَ ٱللَّهُ ٱلَّذِى لَآ إِلَٰهَ إِلَّا هُوَ ۖ عَٰلِمُ ٱلْغَيْبِ وَٱلشَّهَٰدَةِ ۖ هُوَ ٱلرَّحْمَٰنُ ٱلرَّحِيمُ ﴿٢٢﴾ هُوَ ٱللَّهُ ٱلَّذِى لَآ إِلَٰهَ إِلَّا هُوَ ٱلْمَلِكُ ٱلْقُدُّوسُ ٱلسَّلَٰمُ ٱلْمُؤْمِنُ ٱلْمُهَيْمِنُ ٱلْعَزِيزُ ٱلْجَبَّارُ ٱلْمُتَكَبِّرُ ۚ سُبْحَٰنَ ٱللَّهِ عَمَّا يُشْرِكُونَ ﴿٢٣﴾ هُوَ ٱللَّهُ ٱلْخَٰلِقُ ٱلْبَارِئُ ٱلْمُصَوِّرُ ۖ لَهُ ٱلْأَسْمَآءُ ٱلْحُسْنَىٰ ۚ يُسَبِّحُ لَهُۥ مَا فِى ٱلسَّمَٰوَٰتِ وَٱلْأَرْضِ ۖ وَهُوَ ٱلْعَزِيزُ ٱلْحَكِيمُ ﴿٢٤﴾

"वही अल्लाह है ,उसके सिवा कोई ईश्वर नहीं ,परोक्ष और प्रत्यक्ष का ज्ञाता ,वह अपार दयालु सतत् कृपालु है। वही अल्लाह है ,उसके सिवा कोई ईश्वर नहीं ,सर्वशासक ,पवित्रतास्वरूप , शांतिदाता , निश्चिन्ता प्रदान करने

वाला ,संरक्षक ,प्रभुत्वशाली ,बिगड़ी बनाने वाला ,समस्त महिमाओं का स्वामी। अल्लाह उस से अलिप्त है जो ये साझे के रूप में उसके साथ जोड़ते हैं ! वही अल्लाह है ,(शून्य मात्र से) सृष्टि रचने वाला , आत्माओं का रचयिता [1] ,आकृतियां बनाने वाला — सभी अच्छे नाम उसी के हैं। आकाशों और धरती में जो कुछ है उसी का गुणगान करता है ,और वह प्रभुत्वशाली, तत्त्वदर्शी है"। (कुर्आन 59 : 22–24)

परमात्मा सभी सीमाओं से परे है ,उसकी तुलना किसी भी ज्ञात वस्तु से नहीं हो सकती (कुर्आन 42 : 11)। दृष्टियाँ उसका पार नहीं पा सकतीं जबकि वह समस्त दृष्टियों का पार पा लेता है (कुर्आन 6 : 104)। परमात्मा हर दृष्टि से एक ही है ,उस का परम पावन व्यक्तित्व द्वित्व ,त्रित्व तथा अनेकत्व जैसे दोषों से सर्वथा विमुक्त है (कुर्आन 2 : 163 , 16 : 51 , 4 : 171)। वह न किसी का पिता है और न किसी की सन्तान (कुर्आन 112 : 3 , 19 : 90–93)। *परमात्मा सर्वज्ञ* (कुर्आन 20 : 7) ,*सर्वशक्तिमान्* (कुर्आन 16 : 48–50) ,सर्वव्यापक (कुर्आन 58 : 7) है , वह मनुष्य की जीवन–शिरा से भी अधिक उसके निकट है (कुर्आन 50 : 16 , 56 : 85)। कुर्आन शरीफ़ में परमात्मा के और भी अनेक नाम (सद्गुण) वर्णित हैं। जिन से परमात्मा के व्यक्तित्व एवं स्वरूप की पावनता ,उच्चता और महानता का परिचय उसकी चरम सीमा तक पहुँच जाता है। परमात्मा के व्यक्तित्व का जो उत्कृष्ट चित्रण कुर्आन शरीफ़ ने प्रस्तुत किया है उस की तुलना संसार का कोई दूसरा दिव्य ग्रन्थ नहीं कर सकता।

परमात्मा का अस्तित्व

परमात्मा के अस्तित्व पर विश्वास — यही इस्लाम धर्म की आधारभूतशिला है। परमात्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए तीन प्रकार के प्रमाण प्रस्तुत किए गए हैं। ये प्रमाण वास्तव में तीन प्रकार की अकाट्य साक्षियां हैं :

---

1. मूल ग्रन्थ में प्रयुक्त अरबी शब्द خَالِق *"ख़ालिक़"* ,का अर्थ है *'सृष्टि–रचयिता, विशेषकर भौतिक पदार्थों का रचयिता'*. بَارِي *"बारी"* ,का अर्थ है *'आत्माओं का रचयिता'*।

1. भौतिक जगत् की शहादत

ब्रह्मांड यानि भौतिक जगत् को देख कर यह बात सहज ही सामने आ जाती है ,कि इतने बडे जगत् का कोई तो स्रष्टा और संचालक होगा। कुर्आन शरीफ़ में यह गवाही मुख्यतः परमात्मा के गुणसूचक नाम *"रब्ब"* पर केन्द्रित हो जाती है। हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल] का ध्यान ,उन की पहली ही *वह्य* में ,इसी मंगलमय नाम की ओर आकर्षित कराया गया :

اَقْرَأْ بِاسْمِ رَبِّكَ الَّذِى خَلَقَ

"अपने रब्ब के (मंगलमय) नाम से पढ़"। (कुर्आन 96 : 1)

कुर्आन शरीफ़ का शुभारंभ भी इसी नाम से होता है

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِينَ

'अल्लाह की स्तुति हो ! जो समस्त लोकलोकांतरों का रब्ब है"।

(कुर्आन 1 : 1)

प्रभु के अन्य गुणवाचक नामों की अपेक्षा यह नाम कुर्आन शरीफ़ में सर्वाधिक दोहराया गया है। किसी भी भाषा का कोई भी शब्द (जैसे अंग्रेज़ी में ***'Lord'***) *"रब्ब"* शब्द के वास्तविक एंव संपूर्ण भाव को पूरी तरह अभिव्यक्त नहीं कर सकता। क्योंकि *"रब्ब"* शब्द का वास्तविक अर्थ है — *"किसी वस्तु विशेष को पैदा करना ,और फिर उसे एक के बाद दूसरी अवस्था से गुज़ार कर परमावस्था तक पहुंचाना"* (***इमाम राग़िब***)। तात्पर्य यह कि दुनिया की प्रत्येक सृष्ट वस्तु एक उत्तरोतर विकासक्रम की गाथा सुनाती है। क्रमिकविकास की यह यात्रता परमात्मा की *रब्बूबियत* (=*रब्ब–भाव*) का प्रबल सबूत है। क्रमिकविकास (Evolution) के विषय में अन्य धर्मों को बड़ी कठिनाइयाँ पेश आई हैं ,किन्तु इस्लाम में यही सिद्धांत परमात्मा पर विश्वास धरने के लिए एक ठोस वैज्ञानिक आधार बन जाता है। इतना ही नहीं बल्कि सृष्टि रचने के पीछे स्रष्टा का जो प्रयोजन और परमार्थ है उसके पक्ष में भी यह एक प्रत्यक्ष साक्ष्य प्रस्तुत कर देता है। ब्रह्मांड में अनेक प्रकार की विविधताएं और असमानताएं हैं ,यह सब रहते हुए भी सारा ब्रह्मांड *एक ही नियम के अधीन* चल रहा है (कुर्आन 67 : 3–4)। तुच्छाकार परमाणु से लेकर विराट् खगोलीय

पिण्डों तक ब्रह्मांड की प्रत्येक वस्तु *एक कठोर एवं सुनियमित व्यवस्था का अनुशासित रूप से पालन कर रही है* (कुर्आन 36 : 38 , 55 : 5–6)। परमात्मा के अस्तित्व को साबित करने वाले ऐसे ही अकाट्य प्रमाण पवित्र कुर्आन के हर पन्ने पर मौजूद हैं।

2. इन्सानी जीवात्मा की गवाही

प्रभु के अस्तित्व को साबित करने वाले प्रमाणों का दूसरा प्रकार वह है ,जो स्वयं मनुष्य की जीवात्मा से संबंधित है। जिस में प्रभु के अस्तित्व की चेतना पहले से ही अंकित है। मनुष्य की अन्तरात्मा को बार बार यह अपील की गई है :

أَمْ خُلِقُوا۟ مِنْ غَيْرِ شَىْءٍ أَمْ هُمُ ٱلْخَٰلِقُونَ ﴿٣٥﴾ أَمْ خَلَقُوا۟ ٱلسَّمَٰوَٰتِ وَٱلْأَرْضَ

"क्या उनकी रचना निरुद्देश्य है ?" या "क्या वे अपने रचयिता आप हैं ?" "क्या आकाशों और धरती को उन्हों ने ही रचा है ?" (भावार्थ 52 : 35–36)।

أَلَسْتُ بِرَبِّكُمْ

"क्या मैं तुम्हारा रब्ब नहीं ?" (कुर्आन 7 : 172)।

फल यह कि प्रभु के अस्तित्व के प्रति चेतना मानव-प्रकृति का अनिवार्य अंग है। कभी कभी इस चेतना की अभिव्यक्ति उस अकल्पनीय सामीप्य द्वारा की जाती है ,जो मनुष्य की जीवात्मा और परमात्मा के बीच पाया जाता है :

وَنَحْنُ أَقْرَبُ إِلَيْهِ مِنْ حَبْلِ ٱلْوَرِيدِ

"हम मनुष्य की जीवन-शिरा से भी अधिक उसके सनिकट हैं" (50 : 16)।

وَنَحْنُ أَقْرَبُ إِلَيْهِ مِنكُمْ

"हम तुम से भी अधिक तुम्हारी आत्मा के सनिकट हैं" (कुर्आन 56 : 85)।

इन आयतों का अर्थ यही है कि इन्सानी जीवात्मा में परमात्मा के अस्तित्व संबंधी चेतना उसके अपने स्वयं के अस्तित्व संबंधी चेतना से भी ज़्यादा स्पष्ट है। हाँ ! इस में भी संदेह नहीं कि यह चेतना मनुष्य के आंतरिक प्रकाश के अनुरूप न्यूनाधिक हो सकती है।

इस प्रमाण को और ज़्यादा सुशक्त करने के लिए बता दिया कि परमात्मा के अस्तित्व संबंधी यह अहसास कोरी चेतना तक ही सीमित नहीं

बल्कि इस से बढ़ कर भी कुछ और है। परामत्मा ने इन्सान के भीतर अपनी आत्मा फूँक रखी है :

فَإِذَا سَوَّيْتُهُۥ وَنَفَخْتُ فِيهِ مِن رُّوحِى

"तो जब मैं उसका पूर्ण गठन कर लूँ और उस में अपनी आत्मा से फूँक दूँ ..... /" (कुर्आन 15 : 29)

यही वजह है कि मानवीय आत्मा अपने मूलस्रोत यानि परमात्मा के लिए तड़पती है। प्रभु की उपासना करना ,सहायता के लिए उसकी ओर प्रवृत्त होना — यही इन्सान की मूल वृत्ति (instinct) है (कुर्आन 1 : 4)। अतएव घोर विपदा और संकट के समय प्रत्येक इन्सान —आस्तिक हो या नास्तिक — उसी सर्वशक्तिमान दाता के समक्ष याचक बन कर विशुद्ध भाव से दया की भीख माँगता है :

وَإِذَا مَسَّ ٱلْإِنسَـٰنَ ٱلضُّرُّ دَعَانَا لِجَنۢبِهِۦٓ أَوْ قَاعِدًا أَوْ قَآئِمًا

"और जब इन्सान को कष्ट पहुँचता है तो वह हमें पुकारता है —लेटे लेट या बैठे बैठे या खड़े खड़े .... /" (कुर्आन 10 : 12)

وَإِذَا مَسَّ ٱلْإِنسَـٰنَ ضُرٌّ دَعَا رَبَّهُۥ مُنِيبًا إِلَيْهِ

"और जब इन्सान को कष्ट पहुँचता है ,वह अपने रब को पुकारता है ,उसी की ओर पूर्णतया प्रवृत्त होकर .... /" (कुर्आन 39 : 8)

هُوَ ٱلَّذِى يُسَيِّرُكُمْ فِى ٱلْبَرِّ وَٱلْبَحْرِ ۖ حَتَّىٰٓ إِذَا كُنتُمْ فِى ٱلْفُلْكِ وَجَرَيْنَ بِهِم بِرِيحٍ طَيِّبَةٍ وَفَرِحُوا۟ بِهَا جَآءَتْهَا رِيحٌ عَاصِفٌ وَجَآءَهُمُ ٱلْمَوْجُ مِن كُلِّ مَكَانٍ وَظَنُّوٓا۟ أَنَّهُمْ أُحِيطَ بِهِمْ ۙ دَعَوُا۟ ٱللَّهَ مُخْلِصِينَ لَهُ ٱلدِّينَ لَئِنْ أَنجَيْتَنَا مِنْ هَـٰذِهِۦ لَنَكُونَنَّ مِنَ ٱلشَّـٰكِرِينَ

"वही है जो तुम्हें थल और जल में चलाता है ,यहांतक कि जब तुम जलयानों में होते हो ,और वे उन्हें अनुकूल वायु की सहायता से ले कर चलते हैं ,और वे उसका आनंद लेते हैं ,(अकस्मात्) उन्हें प्रचंड वायु आ घेरती है और हर

तरफ से लहरें उन पर चढ़ आती हैं ,और उन्हें लगता है कि वे (मृत्यु पाश में) फँस गए। तब वे अल्लाह को पुकारते हैं ,उसके प्रति विशुद्ध आज्ञाकारिता प्रदर्शित करते हुए : (हे अल्लाह !) यदि तू हमें इस (महा संकट) से मुक्ति दे तो हम निश्चय ही शुक्रगुज़ारों में से होंगे।" (कुर्आन 10 : 22)

इस के अलावा *"प्रभु में आस्था"* का भाव इन्सान की प्रकृति में पहले से ही अंकित है ,यही भाव दुख और संकट के अँधयारों में उसका मार्गदर्शन करता है :

يَهْدِيهِمْ رَبُّهُم بِإِيمَـٰنِهِمْ

"उनका रब उनकी आस्था द्वारा उनका मार्गदर्शन करता है।"

(कुर्आन 10 : 9)

मानव-प्रकृति में प्रभु का प्रेम भी अंकित है ,जिस के अंतर्गत इन्सान निस्स्वार्थ जनसेवा करता है (कुर्आन 2 : 177 ,76 : 8) ,इन दो प्राकृतिक भावों के साथ साथ *"प्रभु पर भरोसा"* का भाव भी मानव-प्रकृति में पहले से ही अंकित होता है ,जो निराशा और असफलता के निरुत्साहजनक क्षणों में इन्सान के लिए शक्ति और हिम्मत का अचूक स्रोत सिद्ध होता है (कुर्आन 14 : 12)।

3. *इलहाम* तथा परमात्मा से सम्भाषण की गवाही

परमात्मा के अस्तित्व पर सब से विश्वसनीय और प्रमाणिकतम गवाही वह है जो इन्सान को उसकी सर्वोच्च आध्यात्मिक अनुभूति द्वारा प्राप्त होती है। जब प्रभु मानो अपने अगोचर चहरे से स्वयं परदा उठा देता है और बन्दे को अपने अस्तित्व की सूचना देता है। भौतिक जगत की सुप्रयोजित व्यवस्था एवं नियमबद्ध कार्यकुशलता पर चिन्तनमनन से केवल इतना ही सिद्ध होता है कि इस सुव्यवस्थित ब्रह्मांड का अवश्य कोई संचालक स्रष्टा *होना चाहिए*। किन्तु यह बौधिक ज्ञान हमें विश्वास के उस ठोस आधार तक नहीं ले जाता जहां हम पूरे यक़ीन और विश्वास के साथ यह कह सकें कि वह परमात्मा *अवश्य मौजूद है*। इन्सान की अन्तरात्मा भी *"अवश्य होना चाहिए"* से आगे कदम नहीं बढ़ा सकती। परमात्मा के अस्तित्व पर सब से विश्वस्नीय

गवाही स्वयं परमात्मा की वाणी (revelation ,*वह्य* या *इलहाम*) द्वारा ही उपलब्ध होती है। इसी से *''विद्यमान होना चाहिए''* का भाव *''वह सच मुच विद्यमान है''* में बदल जाता है। इस ईश्वाणी का दिव्य प्रकाश न सिर्फ परमात्मा के सद्गुणों को पूरप्रदीप्त कर देता है ,बल्कि इन्सान को भी एक ऐसा प्रकाशमय संमार्ग प्रदान करता है जहाँ हर पग पर प्रभु के अस्तित्व का अहसास उसके लिए एक हक़ीक़त बन जाता है ,और उसे परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त हो जाता है। परमात्मा के अस्तित्व संबंधी यह यथार्थ अनुभूति इन्सान के जीवन में एक सुखद क्रांति उत्पन्न कर देती है। और उसके भीतर एक अप्रतिरोध्य दिव्य शक्ति भर जाती है जिस से वह दूसरों की जीवनधारा भी बदल कर रख देता है। इस्लामानुसार ईश्वाणी की यह मंगलमय अनुभूति मानवजाति का एक सार्वभौम तजरुबा है। हर जाति ,हर देश और हर युग के नेक लोग इस दिव्य अनुभूति से लाभान्वित होते आये हैं। इन्सान के इसी सार्वभौम तजरुबा में वह अपार शक्ति है जिस ने हर युग में मानवता को पतन के पंकिल गर्त से निकाला ,और फिर नैतिकता की सर्वोच्च बुलन्दियों के साथ साथ भौतिक प्रगति व विकास की चरम सीमा तक भी पहुंचा दिया।

कुर्आन शरीफ़ का स्वयं अपना उदाहरण

कुर्आन शरीफ़ ईश्वरीय *'वह्य'* का श्रेष्ठतम स्वरूप है। यह परमात्मा के अस्तित्व तथा कृत्य का एक जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस में ऐसे ऐसे अद्भुत जीवन-तथ्यों एवं नियमों का प्रतिपादन हुआ है जो सातवीं सदी ईसवी के एक अनपढ़ अरब के मस्तिष्क में कदापि पैदा नहीं हो सकते थे। और कुर्आन शरीफ ने जो अपूर्व क्रांति उत्पन्न की वह संपूर्ण मानव-इतिहास में अपनी मिसाल आप है। इस ने 23 साल (609ई. – 632 ई.) की अल्पतम कालावधि में प्रायद्वीप अरब के संपूर्ण राष्ट्रीय जीवन में एक सर्वमुखी क्रांति उत्पन्न कर दी। अरब देश में इस से पहले भी सेंकड़ों साल तक सुधार-कार्य होता रहा लेकिन वह सर्वथा निष्फल साबित हुआ। अरब देश में मूर्तिपूजा की जड़ें अत्यन्त गहरी और मज़बूत थीं ,इसका समूल उचाटन कर इसे एकमात्र

परमात्मा की उपासाना में बदल दिया। सभी चिरकालीन अंधविश्वास मिट कर रह गए और इन का स्थान दुनिया के अत्यन्त बुद्धिसंगत धर्म अर्थात् इस्लाम ने ले लिया। वही लोग जो अभी कल तक अपने अज्ञान ,अपनी निरक्षरता पर गर्व करते थे ,ज्ञान–विज्ञान के प्रेमी और संरक्षक बन गए। जहाँ भी ज्ञान–विज्ञान का कोई शीतल स्रोत नज़र आया अरबों ने वहीं पहुंच कर अपनी प्यास बुझाई। समाज के असहाय ,कमज़ोर और गरीब वर्गों के साथ साथ गुलामों और स्त्रीजाति को भी अन्याय और अत्याचार से मुक्ति मिली। न्याय और समानता के नए युग का उदय हुआ। वही अरब समाज ,जो दुष्टता और भ्रष्टता की चरमसीमा तक पहुंच चुका था ,न सिर्फ इन बुराइयों से मुक्त हो गया ,बल्कि उस के अन्दर जनसेवा की अगाध भावना भी जाग उठी। जिस के फलस्वरूप वह अच्छाइयों और पुण्यकार्यों में कार्यरत हो गया। कुर्आन शरीफ़ की इस सुखद क्रांति का दायरा व्यक्तिगत न था — परिवार ,राष्ट्र और समाज सभी इस की शुभंकर परिधि में शामिल थे। आगे कालांतर में संपूर्ण मानवसमाज ही इस मंगलमय क्रांति से आन्दोलित हो उठा। कुर्आन शरीफ़ के सिवा दुनिया में और कोई दिव्य ग्रन्थ नहीं जिस ने इन्सानों के जीवन में इस तरह की सर्वमुखी चमत्कारी क्रांति उत्पन्न कर दी हो। जिस के अन्तर्गत लोग पतन और विनाश के पंकिल गर्त से निकल कर सभ्यता के उच्चतम आसन पर आसीन हो गये।

कुर्आन शरीफ़ ने केवल इतनी ही महा क्रांति उत्पन्न न की ,बल्कि हज़रत पैग़म्बरश्री[ﷺ]के *नबी* नियुक्त किये जाने के साथ ही उस ने एक के बाद एक अनेकों भविष्यवाणियां घोषित कीं ,और स्पष्ट शब्दों में बता दिया कि यह कठोर विरोध अन्ततः बिल्कुल समाप्त हो जाएगा और इस्लाम को विजय और प्रभुत्व हासिल होगा। ये भविष्यवाणियां उस वक्त की गईं जब हज़रत पैग़म्बरश्री[ﷺ]प्रत्यक्षतः बिल्कुल अकेले और असहाय थे ,और चारों ओर से तीव्रतम विरोध में घिरे हुए थे ,और सुदूर भविष्य तक इस्लाम के प्रसार एवं स्थापना की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। तिस पर भी ये भविष्यवाणियां कतिपय वर्षों में आश्चर्यजनक रूप से अक्षरशः पूरी हो गईं। भविष्य में घटने

वाली अकल्पनीय घटनाओं का इतना स्पष्ट और असंदिग्ध ब्योरा किसी भी मनुष्य के लिए संभव न था। कोई भी मानवीय शक्ति उस संपूर्ण राष्ट्र को असफल और पराजित नहीं कर सकती थी जो एक अकेले असहाय मनुष्य के विरूद्ध उठ खड़ा हुआ हो। फलतः ईश्वरीय *'वह्य'* (revelation) ही वह एकमात्र साधन है जो परमात्मा के अस्तित्व का विश्वसनीय एंव अवश्यंभावी सबूत प्रस्तुत कर सकता है। क्योंकि परमात्मा ही वह एकमात्र त्रिकालदर्शी है जिस का ज्ञान समान रूप से भविष्य ,भूत और वर्तमान को घेरे हुए है ,और जिस के वश में समस्त भौतिक शक्तियां और इन्सान का भाग्य है।

توحيد *'तौहीद'* यानि परमेश्वर का एकत्व

कुर्आन शरीफ़ का एक प्रमुख विषय *'तौहीद'* यानि परमेश्वर का एकत्व है। इस का जाना पहचाना सुप्रदर्शन इस्लामी कलिमा 'لَاإِلٰهَ إِلَّااللهُ' *ला इलाह इल्ल–ल्लाह* (= *"अल्लाह के सिवा और कोई ईश्वर नहीं"*) में है ,जिस का अर्थ यही है कि अल्लाह के अतिरिक्त अन्य कोई उपासना या पूजा–अर्चना का पात्र नहीं। परमेश्वर का एकत्व वास्तव में तीन पक्षों पर आधारित है : (1) अल्लाह احد *"अहद"* यानि उसका व्यक्तित्व एक ही है अनेक नहीं ,(2) अल्लाह का कोई सद्गुण किसी और में पूर्णरुपेण विद्यमान नहीं ,(3) अल्लाह ने जो कुछ किया ,या जो कुछ वह कर सकता है ,किसी और में सामर्थ्य नहीं कि ऐसा कर सके। आशय यह कि परमेश्वर अपने *व्यक्तित्व* में ,अपने *सद्गुणों* में तथा अपने *सामर्थ्य* में अद्वितीय है।

توحيد *"तौहीद"* का विलोम شرك *"शिर्क"* है यानि परमेश्वर के व्यक्तित्व में अथवा सद्गुणों में अन्य तथाकथित देवी–दवताओं आदि को उसका شَرِيْك *"शरीक"* या साझेदार ठहराना। شرك *'शिर्क'* को कुर्आन शरीफ़ में महापाप कहा गया है (कुर्आन 31 : 13) ,क्योंकि شرك *'शिर्क'* से इन्सान का नैतिक पतन होता है ,जबकि توحيد *"तौहीद"* इन्सान के नैतिक स्तर को बुलंद कर देती है। कुर्आन शरीफ़ में شرك *'शिर्क'* के कई प्रकारों का वर्णन है ,जैसे मूर्ति पूजा ,पशु पूजा ,प्रकृति पूजा इत्यादि ,बाज़ इन्सानों ,देवी–देवताओं

या अन्य वस्तुओं को ईश्वरीय गुणों का धारक समझना ,जैसे त्रिरूपेश्वरवाद (Trinity) या प्रकृति और आत्मा की परमात्मा के समान शाश्वतता ,महापुरुषों का अंधानुसरण ,या अपनी तुच्छ इच्छाओं और वासनाओं की अमर्यादित पूर्ति —ये सब شرك *'शिर्क'* के ही रूप और प्रकार हैं। شرك *'शिर्क'* के इन रूपों और प्रकारों पर चिन्तनमनन से साफ़ ज्ञात होता है कि توحيد *"तौहीद"* के रूप में इस्लाम ने दुनिया के सामने प्रगति और प्रतिष्ठा का एक ऐसा मंगलमय सिद्धांत प्रस्तुत कर दिया है ,जिस में संपूर्ण मानवजाति के भौतिक ,नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास का एक सुखद एवं सर्वमुखी सन्देश निहित है। توحيد *"तौहीद"* के इस्लामी सिद्धांत से इन्सान को न सिर्फ़ सजीव व निर्जीव वस्तुओं की गुलामी से मुक्ति मिलती है ,बल्कि प्रकृति की अद्‌भुत शक्तियों की दासता से भी छुटकारा मिला ,क्योंकि इन्सान को स्पष्ट शब्दों में बता दिया गया ,कि वह इन प्राकृतिक शक्तियों को वश में कर अपना सेवक बना सकता है (कुर्आन 45 : 12,13)। गुलामियों में सब से बड़ी गुलामी इन्सान की इन्सान के प्रति गुलामी है। इस्लमी *तौहीद* ने इन्सान को इस दासता से भी स्वतंत्र कर दिया। क्योंकि इस्लाम न तो किसी मानव को ईश्वरत्व का पद देता है ,न ही किसी मानव को अतिमानव (Superhuman) समझता है। स्वयं पुरुषोत्तम हज़रत मुहम्मद ﷺ को यह आदेश मिलता है :

قُلْ إِنَّمَآ أَنَا۠ بَشَرٌ مِّثْلُكُمْ يُوحَىٰٓ إِلَيَّ أَنَّمَآ إِلَٰهُكُمْ إِلَٰهٌ وَٰحِدٌ

"कह दे : मैं केवल तुम्हारे ही जैसा मानव हूँ ,(हाँ !) मेरी ओर यह 'वह्य' की जाती है कि तुम्हारा परमेश्वर एक ही परमेश्वर है"।

(कुर्आन 18 : 110)

इस तरह इस्लाम ने दासता और अंधविश्वास की वे सब ज़ंजीरें तौड़ डालीं जिन्हों ने इन्सान के मनमस्तिष्क को शताब्दियों से जकड़ रखा था ,और इन्सान ज्ञानविज्ञान का प्रकाश लेकर फिर से प्रगति और विकास के मंगलमय मार्ग पर अग्रसर हो गया।

5. ईश्वरीय وَحی *'वह्य'* (Divine Revelation)

इस्लाम का दूसरा मौलिक सिद्धांत ईश्वरीय *'वह्य'* पर *ईमान* (विश्वास) है। लेकिन इसका अर्थ सिर्फ उस ईश्वरीय *'वह्य'* पर ईमान लाना नहीं ,जो कुर्आन शरीफ़ की शकल में मौजूद है ,बल्कि कुर्आन के अवतरण से पूर्व भी विभिन्न कालों और विभिन्न देशों में लोगों के मार्गदर्शन हेतु जो कुछ ईश्वरीय *'वह्य'* के रूप में उतरा उस की सत्यता पर विश्वास लाना भी इस में सम्मिलित है। समस्त ईश्वरादिष्ट धर्मों की नींव ईश्वरीय *'वह्य'* पर ही है। किन्तु इस तथ्य को कुछ प्रतिबन्धों के साथ माना जाता है। कुछ धर्मों की मान्यतानुसार *'वह्य'* रूपी यह ईश्वरीय अनुदान मानवजाति को केवल एक ही बार प्रदान किया गया ,कुछ धर्मों में इस दिव्य वरदान को जातिविशेष माना गया है ,और कुछ लोग एक निश्चित् समय के पश्चात् *वह्य* और *इलहाम* के द्वार को बन्द करार देते हैं। लेकिन इस्लाम के आगमन ने ईश्वरीय-सत्ता संबंधी सिद्धांत की भांति ,*वह्य* और *इलहाम* से जुड़ी इन अनुदार एवं संकीर्ण मान्यताओं को दूर कर इस वरदान को विश्वव्यापी और सर्वकालीन बना दिया।

कुर्आन शरीफ़ की शिक्षानुसार ईश्वरीय *वह्य* अपने निम्न स्वरूप,अर्थात् अन्तःस्फूर्ति (inspiration) ,स्वप्न या दिव्य दर्शन (vision) के रूप में मानवजाति का विश्वव्यापी तजरुबा है। अपने उच्चतम स्वरूप ,अर्थात् पैग़म्बरों वाली *वह्य* (Prophetic Revelation) की शकल में भी यह किसी जाति विशेष या व्यक्ति विशेष तक सीमित नहीं। यह दिव्य वरदान ईश्वरादिष्ट ग्रन्थों और विधानों के रूप में हर जाति ,हर राष्ट्र को प्रदान किया गया ,क्योंकि इसके बिना कोई जाति ,कोई राष्ट्र परमेश्वर से संबंध स्थापित नहीं कर सकता था। अतएव यह ज़रूरी था कि परमेश्वर जो समस्त जातियों एवं राष्ट्रों का एकमात्र *रब्ब* (=*पालनहार-स्रष्टा*) है ,जो संपूर्ण मानवजाति की समस्त भौतिक ज़रूरतें पूरी करता है ,उस की दयालुता के लिए अनिवार्य था कि वह इन्सानों के

आध्यात्मिक उत्थान के लिए उन को अपने रूहानी वरदानों द्वारा लाभान्वित करती। आशय यह कि इस्लाम में ईश्वरीय *वह्य* की धारणा मानवता के समान विश्वव्यापी है। एक मुसलमान के लिए ज़रूरी है कि वह सिर्फ़ कुर्आन शरीफ की सत्यता पर ही ईमान न रखे ,बल्कि उन सब दिव्य ग्रन्थों की मौलिक सत्यता पर भी विश्वास रखे जो कुर्आन से पहले विभिन्न जातियों को *वह्य* द्वारा प्रदान किये गये।

पैग़म्बरों–अवतारों पर *ईमान* (विश्वास)

ईश्वरादिष्ट ग्रन्थों की *वह्य* पैग़म्बर या अवतार द्वारा ही प्रदान की जाती थी, अतः ईश्वरादिष्ट ग्रन्थों पर विश्वास का सहज निष्कर्ष यही है कि *वह्य* के प्रापक पैग़म्बर या अवतार की सत्यता पर भी ईमान लाया जाए। पैग़म्बर या अवतार ईश्वरीय संदेश का मात्र धारक ही नहीं होता ,बल्कि वह उस दिव्य संदेश को अपने व्यवहार में ला कर दूसरों के लिए एक व्यवहारिक नमूना प्रस्तुत कर देता है। यों कहिए कि वह दिव्य सन्देश की व्याख्या अपने पवित्र आचरण द्वारा प्रस्तुत कर देता है ,इस तरह अपने अनुयायिओं के लिए एक आदर्श बन जाता है। उसका यही व्यवहारिक आदर्श अनुयायिओं के दिलों में एक जीवन्त विश्वास ,और उनके जीवन में एक सार्थक क्रांति उत्पन्न कर देता है। आशय यह कि पैग़म्बरों–अवतारों पर ईमान लाना अपने में एक गंभीर एवं गहन भाव संजोये हुए है। हम पहले ही बता चुके हैं (देखो परिच्छेद 2) कि संसार के समस्त पैग़म्बरों–अवतारों पर ईमान लाना इस्लामी शिक्षओं का अनिवार्य अंग है। कुर्आन शरीफ़ ने स्पष्ट शब्दों में बता दिया है कि दुनिया के प्रत्येक राष्ट्र ,प्रत्येक समाज में अल्लाह के भेजे हुए आध्यात्मिक माहानुभाव प्रकट होते रहे हैं ,और यह भी कि कुर्आन शरीफ़ में सब के नामों की चर्चा नहीं क्योंकि ऐसा करना ज़रूरी न था। अतः इन पूर्ववर्ती महानुभावों को अपने अपने देश और काल का पैग़म्बर या अवतार मान लेने में मुसलमान को बिल्कुल कोई आपति नहीं ,क्योंकि इन महा पुरुषों को लोग उनके लाये हुए ईश्वरीय सन्देश के कारण ही श्रद्धा और सम्मान का पात्र समझते हैं।

ईश्वरीय *वह्य* का परिपक्व स्वरूप

इस्लाम ईश्वरीय *वह्य* और *इलहाम* को मानवजाति का मात्र एक सार्वभौम अनुभव ही नहीं कहता ,बल्कि वह इस का द्वार सदासर्वदा के लिए खुला भी छोड़ता है। इस में संदेह नहीं कि ईश्वरीय *वह्य* अपनी पूर्णावस्था को पहुंच गई और नबी का पद हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद[सल्ल] के शुभागमन के पश्चात् समाप्त हो गया। अतः अब कोई पैग़म्बर या अवतार प्रकट नहीं हो सकता। किन्तु अल्लाह अब भी हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद[सल्ल] के निर्वाचित परम अनुयायिओं से वार्तालाप करता है। ध्यान रहे कि ईश्वरीय *वह्य* अपने निम्न स्वरूप यानि كَشف *कशफ* व اِلْهَام *इलहाम* की शकल में नबियों और ग़ैरनबियों —दोनों की सामान्य अनुभूति है। अल्लाह का कथन है :

وَإِذْ أَوْحَيْتُ إِلَى الْحَوَارِيِّيْنَ

"और जब मैं ने (ईसा मसीह के) शिष्यों की ओर वह्य भेजी "।

(कुर्आन 5 : 111)

وَأَوْحَيْنَآ إِلَىٰٓ أُمِّ مُوسَىٰٓ

"और हम ने मूसा की माता की ओर वह्य भेजी"। (कुर्आन 28 : 7)

वह्य का केवल एक ही प्रकार यानि وحی نبوت *वह्य–ए–नबूवत* ,जिस के अन्तर्गत पैग़म्बरों–अवतारों द्वारा लोगों के मार्गदर्शन हेतु धर्मविधान आदि उतारा जाता है ,अन्तिम नबी (*ख़ातमन् नबीन*) हज़रत पग़म्बरश्री मुहम्मद[सल्ल] के स्वर्गवासोपरांत समाप्त हो चुका है। अतएव हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल] ने फ़रमया:

> *"نبوت नबूवत* (Prophethood) *में से सिवाय مُبَشِّرَات मुबशिशरात और कुछ शेष नहीं बचा।"*

सहाबा (=*अनुयायी साथियों*) ने निवेदिन किया :

> *"(हे अल्लाह के रसूल !) مُبَشِّرَات मुबशिशरात क्या चीज़ हैं ?"*
>
> आप ने फ़रमाया : اَلرُّؤْيَاالصَّالِحَة *अर्रुया – अल्–सालिहा (="सच्चे स्वप्न")*। (*बुख़ारी* 92 : 5)

हज़रत पग़म्बरश्री[सल्ल] का एक और कथन है :

"इस्राईल जाति में ,जो तुम से पहले थे ,ऐसे महा पुरुष भी थे जिन से अल्लाह वार्तालाप करता था हालांकि वे नबी न थे। यदि मेरी उम्मत (=समस्त उनुयायी वर्ग) में ऐसा कोई है तो वह उमर है" । (*बुख़ारी*)[1]

इन प्रमाणिक *हदीसों* से भी दिन के प्रकाश की भांति यही सिद्ध होता है कि अन्तिम नबी के बाद यद्यापि अब कोई नबी ,रसूल या पैग़म्बर नहीं आ सकता क्योंकि हज़रत पग़म्बरश्री[सल्ल]के शुभागमन द्वारा धर्म और धर्मविधान ,दोनों ही पूर्णता को प्राप्त हो चुके हैं ,लेकिन आप के सच्चे अनुयायी अब भी *इलहाम* रूपी दिव्य वरदान पा सकते हैं। क्योंकि ,परमात्मा की वाणी से ही उस के अस्तित्व का पूर्ण विश्वास होता है। और इस दिव्य वरदान को पाने वाले चुनिंदा महापुरुषों द्वारा ही प्रभु–आस्था का यह जीवन्त भाव आगे मानव–हृदयों में रोपित होता है।

इस्लाम में ईश्वरीय *वह्य* के सिद्धांत का एक और पहलु भी है ,जो इस को अन्य धर्मों से प्रभिन्न करता है। इस्लाम इस बात को बिल्कुल नहीं मानता कि परमात्मा कभी स्वयं मनुष्य के रूप में जन्म या अवतार लेता है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि धर्म का अन्तिम उद्देश्य परमात्मा से संबंध स्थाप्ति करना है। कुर्आनानुसार यह आध्यात्मिक संबंध परमात्मा के मानवीय रूप में अवतार लेने से पैदा नहीं हो सकता। यह संबंध मानवीय वासनाओं और तुच्छ इच्छाओं को क्रमशः तजने और आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्नति द्वारा ही हासिल हो सकता है। वह पुण्यात्मा जो संसार के सम्मुख परमात्मा का चेहरा खोल कर रख देती है ,इन्सान के रूप में परमात्मा नहीं बल्कि एक इन्सान ही होती है। हाँ ! वह एक ऐसा इन्सान होता है ,जिस ने प्रभुप्रेम की अग्नि में अपना अस्तित्व मिटा कर परमात्मा के सद्‌गुणों को आत्मसात कर लिया होता है। उस का जीवन्त चरित्र अन्य लोगों के लिए एक प्रेणा–स्रोत और अनुसरणीय आदर्श होता है। उसके जीवन्त आदर्श से यह बात भलीभांति सुस्पष्ट हो

1. सही *मुस्लिम* 46 : 2 में इन पण्यात्माओं को مُحَدَّثُون *मुहद्दसून* (*=वे ग़ैरनबी जिन से अल्लाह वार्तालाप करता है*) की संज्ञा दी गई है ,और वहीं مُحَدَّثُون *मुहद्दसून* शब्द का अर्थ مُلْهَمُون *मुल्हमून* (*जिन को अल्लाह का इलहाम प्राप्त होता है*) बताया गया है। (अनुवादक)

जाती है कि एक मानव किस प्रकार परमात्मा से संबंध स्थापित कर सकता है। तात्पर्य यह कि इस्लाम के इस विश्वव्यापी सिद्धांतानुसार किसी भी व्यक्ति को ईश्वाणी रूपी वरदान से वंचित नहीं किया जा सकता ,और कोई भी व्यक्ति कुर्आन शरीफ़ का अनुसरण कर इस दिव्य वरदान का पात्र बन सकता है।

6. मरणोपरांत जीवन

मरणोपरांत जीवन की मान्यता किसी न किसी रूप में संसार के सभी धर्मों में पाई जाती है। इस्लाम में इसे धर्म का तीसरा मौलिक सिद्धांत माना गया है। लेकिन किसी अन्य धर्म ने इस रहस्यमय सिद्धांत से उस तरह परदा नहीं उठाया जिस तरह इस्लाम में उठाया गया है। यहूदी धर्म की स्थापना तक यह सिद्धांत इतना धुंधला और अस्पष्ट था कि बाइबिल के पूर्वविधान (Old Testament) में भी इस विषय पर बहुत ही कम प्रकाश मिलता है। यहाँतक कि यहूदियों का एक प्रमुख सम्प्रदाय मरणोपरांत जीवन को बिल्कुल ही नहीं मानता। इस इनकार की वजह यही थी कि पूर्ववर्ती *वह्य* में इस सिद्धांत को ज़्यादा खोल कर प्रतिपादित नहीं किया गया था। पुनर्जन्म या आवागमन (Transmigration of souls) की धारणा भी मानवीय विचारों के अविकसित दौर की उपज है ,इस में आध्यात्मिक तथ्यों को भौतिक वास्तविकता मान लिया गया है। इसके विपरीत इस्लाम ने धर्म के अन्य मौलिक सिद्धांतों की तरह मरणोपरांत जीवन के सिद्धांत को भी इसकी वास्तविक चरम सीमा तक पहुँचा दिया। मरणोपरांत जीवन वाले सिद्धांत का मात्र ध्येय इन्सान का उत्तरदायित्व है ,यानि यह विश्वास कि दुनिया में किये गए कर्मों की जवाबदेही मरणोपरांत होगी। निस्संदेह यह मान्यता संसार में मानवीय नैतिकता की उन्नति और विकास का एक मूल्यवान् आधार है ,बशर्ते कि इस मान्यता को इस के यथोचित भाव में ग्रहण किया जाए। कुर्आन शरीफ़ ने इस विषय के निम्न पक्षों पर विशेष बल दिया है :

मरणोपरांत जीवन सांसारिक जीवन का संतत क्रम है

मरणोपरांत जीवन तथा सांसारिक जीवन के बीच एक काल्पनिक खाई सन्निविष्ट कर दी गई है ,मरणोपरांत जीवन के रहस्य को समझने में सब से बड़ी बाधा यही बात है। इस्लाम ने इस तथाकथित खाई को एकदम मिटा दिया है ,क्योंकि इस्लामानुसार मनुष्य का अगला जीवन कोई अलग जीवन नहीं बल्कि वर्तमान जीवन का ही अगला पढ़ाव है। इस तथ्य को कुर्आन शरीफ़ ने सविस्तार सुस्पष्ट कर दिया है , फ़रमाया :

وَكُلَّ إِنسَٰنٍ أَلْزَمْنَٰهُ طَٰٓئِرَهُۥ فِى عُنُقِهِۦ ۖ وَنُخْرِجُ لَهُۥ يَوْمَ ٱلْقِيَٰمَةِ كِتَٰبًا يَلْقَىٰهُ مَنشُورًا

"और प्रत्येक मनुष्य के कर्मों को हम ने (इसी जीवन में) उस की गरदन के साथ चिपका दिया ,और इन गुप्त कर्मफलों को हम क़यामत के दिन एक किताब के रूप में प्रकट करें गे ,जिन्हें वह खुला हुआ पाये गा" (17 : 13)।

وَمَن كَانَ فِى هَٰذِهِۦٓ أَعْمَىٰ فَهُوَ فِى ٱلْءَاخِرَةِ أَعْمَىٰ وَأَضَلُّ سَبِيلًا

"और जो कोई इस दुनिया में अँधा रहा तो वह परलोक में भी अँधा होगा बल्कि संमार्ग से अधिक भटका हुआ" (कुर्आन 17 : 72)।

يَٰٓأَيَّتُهَا ٱلنَّفْسُ ٱلْمُطْمَئِنَّةُ ﴿٢٧﴾ ٱرْجِعِىٓ إِلَىٰ رَبِّكِ رَاضِيَةً مَّرْضِيَّةً ﴿٢٨﴾
فَٱدْخُلِى فِى عِبَٰدِى ﴿٢٩﴾ وَٱدْخُلِى جَنَّتِى ﴿٣٠﴾

"हे संतुष्ट आत्मा ! अपने पालनहार-स्रष्टा की ओर लौट आ ,तू उस से राज़ी वह तुझ से रज़ी ,अतः मेरे भक्तों में शामिल हो जा ,और मेरे स्वर्ग में प्रविष्ट हो जा" (कुर्आन 89 : 27–30)।

पहले उद्धरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि क़यामत के दिन इन्सान को किसी नवीन परिस्थिति का सामना नहीं हो गा ,बल्कि उसे वही कुछ देखना पड़े गा जो यहां से ही उसके साथ है ,किन्तु जिसे उस की भौतिक आँख निहार नहीं पाती। अतएव परलोक का जीवन कोई नवीन जीवन

नहीं बल्कि इसी जीवन की अगली कड़ी है ,जो इहलौकिक जीवन के गुप्त रहस्यों को अभिव्यक्त कर देगी। और अन्य दो उद्धरणों से ज्ञात होता है कि इन्सान के स्वर्गीय अथवा नरकीय जीवन का आरंभ इहलौकिक जीवन में ही हो जाता है। पारलौकिक अँधापन ही नरकीय जीवन है और यह अँधापन सांसारिक जीवन का आध्यात्मिक अँधापन है। आशय यह कि सांसारिक जीवन का आध्यात्मिक अँधापन ही परलोक में नरकीय जीवन का रूप धारण कर लेता है। नरकीय जीवन का आरंभ इसी सांसारिक जीवन में हो जाता है ,लेकिन इस की प्रत्यक्ष एवं संपूर्ण अभिव्यक्ति परलोक में ही होती है। फलतः जो आत्मा यहां पूर्ण संतोष को प्राप्त हो गई उसी को मरणोपरांत स्वर्ग में प्रवेश मिले गा। जिस का अर्थ यही हुआ कि स्वर्गीय जीवन वास्तव में उसी संतोष और निश्चिन्ता का अनुक्रम है जिस की प्राप्ति आत्मा को इसी लोक में हो जाती है। तात्पर्य यह कि कुर्आनानुसार मरणोपरांत जीवन सांसारिक जीवन से जुड़ा हुआ है ,मृत्यु इन दो जीवनों के बीच क्रमबन्जक नहीं बल्कि एक संयोजी कड़ी है। मृत्यु एक द्वार है जिस के खुलने से वे सारे रहस्य प्रत्यक्ष रूप में सामने आ जाते हैं जो इस जीवन में अगोचर थे।

मरणोपरांत अवस्था मनुष्य की आध्यात्मिक अवस्था का प्रतिबिंब है

इस्लाम ने मरणोपरांत जीवन के विषय में सार्थक तथ्यों को प्रतिपादित किया है। ईसाई धर्मग्रन्थों में शारीरिक और आध्यात्मिक तत्त्वों का सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है ,रोनधोना ,दांत पीसना ,कभी न शांत होने वाली आग — पापियों की इन नरकीय सज़ाओं के संग-संग पुण्यात्माओं के पुण्यफल, स्वर्गीय राज्य ,स्वर्गीय वरदानों और शासवत जीवन का उल्लेख भी मिलता है। किन्तु इस बात का स्पष्टीयकरण कहीं नहीं मिलता कि आख़िर इन पारलौकिक यातनाओं या पुरस्कारों का मूलस्रोत क्या होगा। इसके विपरीत कुर्आन शरीफ़ में इस तथ्य की पूर्ण एवं सविस्तार विवेचना की गई है कि मनुष्य की मरणोपरांत दशा उसी आध्यात्मिक दशा का संपूर्ण प्रतिबिंब अथवा प्रत्यक्ष चित्र होगा जिस को उसने अपने सांसारिक जीवन में धारण किया

होगा। मनुष्य की मान्यताओं तथा कर्मों का गुण व दोष मनुष्य के भीतर विद्यमान होते हुए भी उसकी शारीरिक आँख से गुप्त रहता है। और भीतर ही भीतर उसके व्यक्तित्व पर अच्छा या बुरा प्रभाव डालता है। परलोक में ये गुण और दोष अपने प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हो जाएं गे। हमारे कर्म और उनके प्रभाव इहलौकिक जीवन में क्या क्या रूप धारण करते हैं ,ये बातें भौतिक दृष्टियों से अगोचर रहती हैं ,परन्तु अगले लोक में खुल कर हमारे सामने आ जाएं गी। तात्पर्य यह कि अगले जीवन का दुख–सुख ,कष्ट और आराम यद्यापि आध्यात्मिक मामले हैं ,इहलौकिक जीवन के प्रतिकूल अगले जीवन में वे साधारण दृष्टियों से ओझल न होंगे। इसी लिए पारलौकिक सुख-भोगों को जहाँ सांसारिक वरदानों के नाम दिये गए हैं —ताकि असल वास्तविकता आँखों के सामने रहे ,वहीं दूसरी ओर साफ़ तौर पर बता दिया गया है :

"अल्लाह फ़रमाता है : जो कुछ मैं ने अपने बन्दों के लिए तैयार कर रखा है , उसे न किसी आँख ने देखा , न किसी कान ने सुना , और न किसी इन्सान के मन में उसका विचार ही आया" (*बुख़ारी* 59 : 8)।

स्वर्गीय सुख-भोगों का यह ब्योरा असल में कुर्आन शरीफ़ की इस आयत की व्याख्या है :

فَلَا تَعْلَمُ نَفْسٌ مَّآ أُخْفِىَ لَهُم مِّن قُرَّةِ أَعْيُنٍ جَزَآءًۢ بِمَا كَانُوا۟ يَعْمَلُونَ

"अतः कोई व्यक्ति नहीं जानता कि उनके लिए कैसी आँखों की ठंडक छिपा कर रखी गई है — उस का बदला जो वे करते थे" (कुर्आन 32 : 17)।

कुर्आन शरीफ़ की निम्न आयत को सामान्यतः ग़लत अर्थ में लिया जा सकता है ,लेकिन यहाँ भी स्वर्गीय सुखों को कदापि भौतिक सुख-भोगों के समरूप नहीं बताया गया है ,फ़रमाया :

وَبَشِّرِ ٱلَّذِينَ ءَامَنُوا۟ وَعَمِلُوا۟ ٱلصَّٰلِحَٰتِ أَنَّ لَهُمْ جَنَّٰتٍ تَجْرِى مِن تَحْتِهَا ٱلْأَنْهَٰرُ ۖ كُلَّمَا رُزِقُوا۟ مِنْهَا مِن ثَمَرَةٍ رِّزْقًا ۙ قَالُوا۟ هَٰذَا ٱلَّذِى رُزِقْنَا مِن قَبْلُ ۖ وَأُتُوا۟ بِهِۦ مُتَشَٰبِهًا ۖ

"और उनको शुभसूचना देदे ,जो ईमान लाते और अच्छे कर्म करते हैं ,कि उन के लिए बाग़ हैं जिन के नीचे नहरें बहती हैं। जब कभी उनको उन में का कोई फल सेवनार्थ दिया जाए गा ,कहें गे : 'यह वही है जो हमें पहले दिया गया' ,और उनको मिलता जुलता (दिव्य प्रसाद) दिया जाए गा" (2 : 25)।

इस आयत में सुकर्मी-जन जिस फलादि के पर्व-सेवन की चर्चा करते हैं ,वे वे फल तो हो नहीं सकते जो वृक्षों पर लगते हैं या जिन की तुलना सांसारिक वस्तुओं से की जा सके। इस आयत का वास्तविक भाव यह है कि नेक कर्म करने वाले ईमानधारी लोग सुकर्मों द्वारा अपने अपने स्वर्ग का निर्माण स्वयं अपने हाथों से करते हैं। उन के पुण्यकर्म ही स्वर्गीय वाटिकाओं के फल बन जाएं गे ,और यही वे फल हैं जिन्हें वे कभी कभी इस लोक में भी रूहानी तौर चख लेते हैं। और पारलौकिक जीवन में वे इन्हीं फलों को अधिक ठोस और प्रत्यक्ष रूप में निहारें गे। इसी वास्तविकता को सिद्ध करने लिए हम कुर्आन शरीफ़ की यह आयत पेश करते हैं :

يَوْمَ تَرَى الْمُؤْمِنِينَ وَالْمُؤْمِنَاتِ يَسْعَىٰ نُورُهُم بَيْنَ أَيْدِيهِمْ وَبِأَيْمَانِهِم

"जिस दिन तू ईमान वाले मर्दों और ईमान वाली औरतों को देखे गा ,उनका प्रकाश उनके आगे आगे दौड़ रहा होगा और उन की दायीं ओर ....."।

(कुर्आन 57 : 12)

इस आयत से साफ ज्ञात होता है कि *"ईमान का प्रकाश"* जो इस दुनिया में ईमान वालों का मार्गदर्शन करता है ,किन्तु भौतिक दृष्टि से अगोचर रहता है ,वह परलोक में साफ़ नज़र आयेगा और ईमान वालों के साथ रहेगा।

स्वर्गीय वरदानों की तरह नरकीय यातनाएं भी सांसारिक जीवन में पाये जाने वाले रूहानी कष्टों का ही प्रतिबिंब हैं। कुर्आन शरीफ़ ने एक जगह नरक़ को यों परिभाषित किया है : नरक वह स्थल है जहाँ अपराधी

لَا يَمُوتُ فِيهَا وَلَا يَحْيَىٰ

"न तो मरता है और न ही जीवित रहता है" (कुर्आन 20 : 72)।

ध्यान रहे कि कुर्आन शरीफ़ ने अनेकशः पापियों को *" मुर्दा"* तथा सुकर्मियों को *"ज़िन्दा"* कहा है। इस का रहस्य यही है कि जो लोग परमात्मा को बिसराए हुए हैं उनके जीवन का उद्देश्य केवल खानपान और भोगविलास तक ही सीमित है ,और मृत्यु से ये चीज़ें समाप्त हो जाती हैं। आध्यात्मिक भोजन से उन्हें कोई हिस्सा नहीं मिलता इस लिए वो रूहानी अथवा वास्तविक जीवन से वंचित ही रहते हैं। अतएव परलोक में उन्हें उन के दुष्कर्मों का दुष्फल भोगने के लिए उठाया जाये गा।

पारलौकिक जीवन में असीम उन्नति

इस्लामानुसार अगले जहान में भी इन्सान के लिए उन्नति और विकास का एक असीम क्षेत्र खुला है। इस सिद्धांत के पीछे भी एक नियम कार्यरत नज़र आता है ,वह यह कि इन्सान की शक्तियां और क्षमताएं तरक्की के मार्ग पर नितांत सक्रिय रहती हैं ,कभी शिथिल एवं निष्क्रिय नहीं होतीं। मरणोपरांत उन्हें विकसित होने के और अधिक अवसर प्राप्त हो जाएं गे। नरक का एकमात्र उद्देश्य पापियों को उस अशुद्धता से पाक करना है जो उन्हों ने पापकर्मों द्वारा उपार्जित की है। इस शोधन से वे पुनः उस आध्यात्मिक जीवन के अधिकारी बन जाते हैं जो पारलौकिक उन्नति व विकास के लिए आवश्यक है। *सूरः हूद* (=कुर्आन शरीफ़ का 11वाँ अध्याय) की 106वीं और 107वीं आयत से साफ़ ज्ञात होता है कि नरक की सज़ा स्थाई नहीं। हज़रत पैग़म्बश्री[सल्ल]की पवित्र *हदीसें* और *सहाबा* के कथनों से भी यही साबित होता है कि नरक पापी का स्थाई ठिकाना नहीं — चाहे पापी मुसलमान हो या ग़ैरमुस्लिम। नरकीय यातना वास्तव में पापियों की रूहानी बीमारियों का उपचार मात्र है रोगमुक्त होते ही वे पुनः आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो जाएं गे।

स्वर्ग भी मात्र सुख और आनन्द भोगने का स्थल नहीं। यह वास्तव में एक ऐसा पुण्यस्थल है जहाँ भक्त उत्तमोत्तम सिद्धियां प्राप्त कर उन्नति व विकास के मार्ग पर आगे ही आगे बढ़ता चला जाता है :

لَهُمْ غُرَفٌ مِّن فَوْقِهَا غُرَفٌ مَّبْنِيَّةٌ

"(स्वर्ग वालों) के लिए (उन्नति और विकास के) उच्च स्थान हैं ,जिनके ऊपर और भी उच्च स्थान बने हुए हैं" (कुर्आन 39 : 20)।

स्वर्ग में रहने वालों के मन में कभी समाप्त न होने वाली इच्छा यही होगी कि वे इन उत्तमोत्तम पदों पर आसीन होते चले जाएं। अतः वहाँ उन की स्थाई प्रार्थना यही होगी :

يَقُولُونَ رَبَّنَآ أَتۡمِمۡ لَنَا نُورَنَا

"हे हमारे पालनहार–स्रष्टा ! हमारा प्रकाश हमारे लिए पूर्ण कर दे" ।
(कुर्आन 66 : 8)

7. ईमान (=विश्वास) का अर्थ

फ़रिश्तों पर ईमान लाने का अर्थ

इस्लाम के तीन मौलिक सिद्धांतों — अदृश्य पर विश्वास ,पैग़म्बरों पर विश्वास और आख़िरत पर विश्वास — के संक्षिप्त विवेचन के बाद हम *"अदृश्य पर विश्वास"* वाले सिद्धांत के संबंध में कुछ और भी कहना चाहें गे, वह यही कि इस में उन अदृश्य कार्यवाहक अभिकर्ताओं पर ईमान लाना भी शामिल है जिन को हम फ़रिश्तों (Angels) के नाम से जानते हैं। यों तो *"फ़रिश्तों पर ईमान"* वाले सिद्धांत को कई धर्मों ने स्वीकारा है ,किन्तु इस मान्यता को वह व्यापकता प्राप्त नहीं जो उपरोक्त तीन मौलिक सिद्धांतों को प्राप्त है। इस लिए इस मान्यता के संदर्भ में यहाँ कुछ बता देना अनुचित न होगा। भौतिक जगत् का एक निर्विवाद नियम है ,कि मनुष्य को जो भी आंतरिक क्षमताएं और शक्तियां दी गई हैं उन को कार्यान्वित करने के लिए बाह्य माध्यमों (external agents) की ज़रूरत है। दृष्टि के लिए मनुष्य को आँख प्रदान की गई है ,इसी की सहायता से इन्सान वस्तुओं को निहारता है, लेकिन स्वयं आंख इस मामले में एक बाह्य माध्यम —प्रकाश—की मोहताज है ,प्रकाश के अभाव में वह कुछ भी निहार नहीं सकती। इसी प्रकार कान आवाज़ को सुनता है ,किन्तु वह यह काम एक बाह्य माध्यम —वायु— के

बिना नहीं कर सकता। अतः बाह्य माध्यमों (external agents) के बिना आंतरिक शक्तियां कार्यान्वित नहीं हो सकतीं ,यही नियम मनुष्य की आध्यात्मिक शक्तियों पर लागू होता है।

अच्छे या बुरे कर्म करने के लिए भी इन्सान को अपनी आंतरिक क्षमाताओं एवं आध्यात्मिक शक्तियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे बाह्य माध्यमों (external agents) की आवश्यकता है जिनका एक अलग और स्वतंत्र अस्तित्व है। नेकी की प्रेरणा देने वाले बाह्य माध्यमों को *"फ़रिश्तों"* (angels या देवदूतों) की संज्ञा दी गई है। बुराई की प्रेरणा ,तथा मन में भ्रमित विचार जगाने वाले दुष्ट माध्यम को *"शैतान"* की संज्ञा दी गई है। फल यह कि नेकी की प्रेरणा कबूल कर इन्सान روح القدس *"रूह अल्–कुदस"* (पवित्रात्मा) या दैवी माध्यम का अनुसरण करता है ,और पाप की प्रेरणा को अंगीकार कर शैतान के पदचिन्हों पर चलता है। अतः फरिश्तों पर ईमान या विश्वास लाना वास्तव में नेकी की प्रेरणा कबूल करना ,या नेक विचारों को अमलाना है।

ईमान कर्म का आधार है

उपरोक्त व्याख्या से न सिर्फ़ *'फ़रिश्तों'* पर ईमान की असल वास्तविकता का स्पष्टीकरण हो जाता है ,बल्कि स्वयं *"ईमान"* का सही और वास्तविक अर्थ भी निखर कर सामने आ जाता है। इस्लामानुसार ईमान का अर्थ किसी बात को केवल स्वीकार कर लेना ही नहीं ,बल्कि इस में निहित भाव को कर्म में परिवर्तित करना है। हम पहले बता चुके हैं कि शैतान और फ़रिश्ते दोनों बाह्य माध्यम हैं ,जिन के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। किन्तु फ़रिश्तों पर ईमान लाना मुसलमान के मौलिक सिद्धांतों में शामिल है ,इसकी बार बार ताकीद की गई है। इसके विपरीत शैतान पर ईमान लाने का कहीं भी ज़िक्र नहीं ,जब कि उसका अस्तित्व फ़रिश्तों की भांति एक अटल हक़ीक़त है। और शैतान की कुप्रेणाओं का उल्लेख कुर्आन शरीफ़ में सर्वत्र मौजूद है। अब यदि ईमान का अर्थ केवल अस्तित्व स्वीकार करना ही हो ,तो शैतान के अस्तित्व की विद्यमानता के निमित उस पर ईमान लाना भी अनिवार्य हो जाता। किन्तु

यह वास्तविकता नहीं। इन्सान के लिए ज़रूरी है कि वह नेकी की प्रेरणा को कबूल कर उसको व्यवहार में ले आए ,और पाप की प्रेरणा को तज कर उस पर अमल न करे। तात्पर्य यह कि नेकी की प्रेरणा देने वाले फ़रिश्तों पर ईमान लाना पुण्यकर्म की बुनियाद है। इसके प्रतिकूल शैतान यानि पापकर्म की ओर प्रेरित करने वाले की प्रेरणाओं को रद्द करना भी पुण्य के लिये परमावश्यक है। इसी लिए कुर्आन शरीफ़ ने जहां नेकी के प्रेरकों यानि फ़रिश्तों पर ईमान लाना अनिवार्य ठहराया है ,वहीं पाप के प्रेरक यानि शैतान की प्रेरणाओं के *"कुफ़्र"* यानि इनकार को भी ज़रूरी बताया है। कुर्आन का कथन है :

فَمَن يَكْفُرْ بِالطَّٰغُوتِ وَيُؤْمِنۢ بِاللَّهِ فَقَدِ ٱسْتَمْسَكَ بِٱلْعُرْوَةِ ٱلْوُثْقَىٰ لَا ٱنفِصَامَ لَهَا ۗ

"सो जो कोई शैतान का "कुफ़्र"(=इनकार) कर अल्लाह पर ईमान लाता है वह निश्चय ही एक ऐसे मजबूत सहारे को सुदृढ़ता से पकड़ लेता है जो टूटने वाला नहीं" (कुर्आन 2 : 256)।

अतः इस्लाम के सभी विश्वास संबंधी सिद्धांत वास्तव में कर्म के लिए मज़बूत आधार प्रस्तुत करते हैं। अल्लाह वह परम सत्ता है जिस में सभी सद्गुण पूर्णरूपेण विद्यमान हैं ,अब अल्लाह की परम पावन सत्ता पर ईमान लाने का अर्थ यही है कि हम भी अपने अपने सामर्थ्य अनुसार उसके सद्गुणों को अपने व्यक्तित्व में प्रतिबिंबित करें। अल्लाह की *वह्य* पर ईमान लाने का मतलब यही है कि हम ईश्वरीय *वह्य* पाने वाली पवित्र आत्माओं के सद्गुणों और खूबियों को आत्मसात कर लें। इसी प्रकार आख़िरत पर ईमान लाने का उद्देश्य यह है कि हम अपने कर्मों के उत्तरदायित्व के प्रति सदैव सजग और सावधान रहें।

8. कर्म विषयक नियम

अब हम इस्लाम धर्म के व्यवहारिक पहलुओं को लेते हैं। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि इस्लाम में *ईमान* (विश्वास) और कर्म ,धर्म के दो आधारभूत अंग हैं। इस तरह इस्लाम को अन्य धर्मों के बीच एक माध्यमिक

स्थान हासिल है। क्योंकि जहाँ एक ओर वे धर्म हैं जो कर्म को बिल्कुल नज़र अंदाज़ कर देते हैं ,तो दूसरी ओर वे धर्म हैं जो मनुष्य को कर्मकांड की जटिल सांकल में जकड़ देते हैं। इस्लाम इन्सान की शक्तियों और क्षमताओं की उन्नति व विकास के निमित केवल सामान्य एवं अविस्तृत आदेश देता है, ताकि मनुष्य के सामने चिन्तन मनन और विवेक का व्यापक मैदान खुला रहे।

एक सुदृढ़ व्यवहार-व्यवस्था का अभाव किसी भी धर्म को मात्र कल्पनावाद (Idealism) बना उसे उसके मूल उद्देश्य से दूर कर देता है। परिणामतः वह इन्सानी जीवन के व्यवहारिक पहलु पर कोई असर नहीं डाल सकता। इस्लाम विहित नियम और सिद्धांत — जिन में अल्लाह और मनुष्यमात्र के प्रति कर्तव्यों का बखान है — उनकी बुनियाद मानवप्रकृति के उस गहन एवं संपूर्ण ज्ञान पर है जिस का बोध एकमात्र प्रकृति-रचयिता के अतिरिक्त और किसी को नहीं हो सकता। इस्लाम के ये नियम और सिद्धांत मानवीय उन्नति और विकास के सभी क्षेत्रों को घेरे हुए हैं। और संसार में बसने वाली विभिन्न जातियों की बहुविध आवश्यकताओं के साथ आश्चर्यजनक हद तक मेल खाते हैं। कुर्आन शरीफ़ में एक आम इन्सान के साथ साथ दार्शनिक गण के लिए भी मार्गदर्शन मौजूद है। संसार में बसने वाली निम्न सभ्य और महा सभ्य जातियों और राष्ट्रों के लिए भी इस में पर्याप्त मार्गदर्शन मौजूद है। इन नियमों का मूल-भाव "व्यवहार" है। सिद्धांतों की तरह इस्लाम के व्यवहार संबंधी आदेश भी विश्वव्यापी हैं। ये हर राष्ट्र ,हर युग की बहुविध आवश्यकतों को यथोचित ढंग से पूरा करते हैं।

9. मनुष्य के अल्लाह के प्रति कर्तव्य

नमाज़ या उपासना

अनुच्छेद संख्या 3 में *सूरः बक़रह* की तीन आयतों — *".....और जो नमाज़ कायम करते हैं ,और जो कुछ हम ने उन्हें दिया है उस में से (दानार्थ) व्यय करते हैं....."* — के अन्तर्गत हम ने लिखा था कि यही आयतें संपूर्ण इस्लामी

शिक्षा का तत्त्वसार हैं। मोटे तौर पर देखा जाए तो इन आयतों में व्यवहार संबंधी जिन दो नियमों को प्रतिपादित किया गया है उन में के एक का संबंध उन कर्तव्यों से है जो हम ने अल्लाह के प्रति निभाने हैं ,और दूसरे का संबंध उन कर्तव्यों से है जो हम ने मनुष्य मात्र के प्रति निभाने हैं। इस्लामी परिभाषा में पहले को حقوق الله *"हकूकु–ल्लाह"* (अल्लाह के अधिकार) और दूसरे को حقوق العباد *"हकूकु–ल्अिबाद"* (बन्दों के अधिकार)कहा जाता है।

उपासना (नमाज़) *'हकूकु–ल्लाह"* का तत्त्वसार है। यह परमात्मा के सम्मुख भक्त के मनोभावों की विशुद्ध एवं श्रद्धायुक्त अभिव्यक्ति है। यह मानव-आत्मा का अपने स्रष्टा के प्रति सच्चा और निःस्वार्थ विनय-निवेदन है। अन्य धर्म विषयक विचारों की भांति इस्लाम ने प्रार्थना संबंधी विचार को भी उसकी चरम सीमा तक पहुंचा दिया है। कुर्आन शरीफ़ानुसार नमाज़ या प्रार्थना उस हृदय-शोधन का पर्याप्त साधन है जो अल्लाह से संबंध स्थापित करने के लिए परमावश्यक है। अल्लाह कुर्आन शरीफ़ में फ़रमाता है :

اُتْلُ مَآ أُوحِىَ إِلَيْكَ مِنَ ٱلْكِتَٰبِ وَأَقِمِ ٱلصَّلَوٰةَ ۖ إِنَّ ٱلصَّلَوٰةَ تَنْهَىٰ عَنِ ٱلْفَحْشَآءِ وَٱلْمُنكَرِ ۗ وَلَذِكْرُ ٱللَّهِ أَكْبَرُ ۗ

"उसे पढ़ता रह जो तेरी ओर किताब से वह्य किया जाता है ,और नमाज़ को क़ायम रख क्योंकि नमाज़ अश्लीलता और बुराई से रोक देती है , और अल्लाह का स्मरण निश्चय ही महा (शक्ति) है"(29 : 45)।

तात्पर्य यह कि इस्लाम ने नमाज़ कायम रखने का हुकम इन्सान के नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान हेतु ही दिया है। जो नमाज़ अपकर्ष और गिरावट के कारण एक बेजान ,श्रद्धावहीन ,बाहरी आडंबर बन कर रह गई हो उस के लिए इस्लाम में कोई स्थान नहीं ,और न ही यह वह नमाज़ है जिस के पढ़ने का मुसलमान को हुकम है। कुर्आन शरीफ़ में ऐसी आत्मारहित नमाज़ की साफ़ शब्दों में निन्दा मिलती है :

فَوَيْلٌ لِّلْمُصَلِّينَ ﴿٤﴾ ٱلَّذِينَ هُمْ عَن صَلَاتِهِمْ سَاهُونَ ﴿٥﴾ ٱلَّذِينَ هُمْ يُرَآءُونَ ﴿٦﴾

"अतः उन नमाज़ियों का नाश हो जो अपनी नमाज़ के प्रति असावधान हैं ,जो दिखावे के लिये (नेकी) करते हैं" (107 : 4–6)।

इसके तुरन्त बाद कहा गया है कि ये लोग وَيَمْنَعُونَ ٱلْمَاعُونَ *"जनसेवा के लघुतम कार्यों को भी रोकते हैं"*। जिसका अर्थ यही है कि नमाज़ उस वक्त तक लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकती जब तक नमाज़ी को नमाज़ द्वारा निस्स्वार्थ जनसेवा की प्रेरणा न मिले।

इस्लाम में कोई सैबथ (Sabbath) यानि पूजादि का दिन निश्चित् नहीं। बल्कि यहां *इबादत* (=उपासना) को दैनिक कार्यक्रम में शामिल कर दिया गया है। हर मुसलमान अपने दिन का आरंभ और अन्त नमाज़ से ही करता है। इन दो (यानि فجر *फ़जर* और عشا. *अिशा* की) नमाज़ों के बीच वह समय समय पर तीन नमाज़ें और भी पढ़ता है। इन नमाज़ें का आयोजन कारोबार की व्यस्तता या आमोद-प्रमोद के मनोरंजक क्षणों — दोनों अवस्थाओं में एकसमान किया जाता है। फलतः इस्लाम यही चाहता है कि मुसलमान कारोबार की अत्यन्त व्यस्तता के समय भी कुछ वकत के लिए इस से अलग हो जाए ,और अपने प्रभुवर के समाने श्रद्धापूर्वक नतमस्तक हो। इस्लाम ने वैराग्य के सभी रूपों और प्रकारों को समाप्त कर दिया ,क्योंकि ये प्रभु से संबंध स्थाप्ति करने के लिए भक्त को समस्त सांसारिक सुखभोग त्यागने पर विवश करते हैं। इस के विपरीत इस्लाम में प्रभुसंबंध की स्थापना सांसारिक कामधन्दों में व्यस्त रह कर भी की जा सकती है। तात्पर्य यह कि जो बात इस्लाम से पहले असंभव समझी जाती थी उसी को इस्लाम ने अमलन संभव कर दिखाया।

इस्लाम ने नमाज़ (उपासना) की ऐसी यथोचित विधि प्रस्तुत की है जिस के अन्तर्गत नमाज़ी का सारा ध्यान प्रार्थना के मूल उद्देश्य — *अल्लाह की विद्यमानता का अहसास* — पर केन्द्रित हो जाता है। नमाज़ से पहले *वुज़ू* (=शरीर का प्रक्षालन) ,और फिर विनम्रतापूर्वक खाड़े रहना ,झुकना सजदा करना और अन्त पर श्रद्धापूर्वक बैठना — नमाज़ की ये मुद्राएं नमाज़ी

के मन में प्रभु की विद्यमानता का पावन अहसास जगाने में सहायक बनती हैं। नमाज़ी का मनमस्तिष्क इस बात पर आनंदविभोर हो उठता है कि अपने वास्तविक स्वामी का स्तुतिगान करते समय ज़ुबान के साथ साथ शरीर भी उसका साथ दे रहा है।

नमाज़ का *जमाअत* के रूप में आयोजन जहां जातिगत ,वर्णगत या अन्य वर्गीय भेदभावों को अमलन मिटा देता है ,वहीं उस सामूहिक प्रेम और सौहार्द को भी जन्म देता है जो एक सुखद एवं स्थाई सभ्यता के लिए अवश्यंभावी है। *जमाअत* नमाज़ में सभी नमाज़ी अपने पालनहार परमात्मा के सम्मुख बिना भेदभाव परस्पर कन्धे से कन्धा मिलाकर खड़े होते हैं। राजा रंक के साथ ,धनवान भिखारी के साथ ,गोरा काले के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर। इतना ही नहीं ,बल्कि पिछली पंक्ति में खड़े बादशाह या धनवान को सजदा करते समय अपना सिर अगली पंक्ति में खड़े दीनहीन व्यक्ति के चरणों में रखना पड़ता है। आशय यह कि मस्जिद में पहुंचकर पद ,धनसंपति रंग और जाति सरीखे सभी मानवीय भेदभाव समाप्त हो जाते हैं ,और एक विशुद्ध बंधुत्व ,समानता और प्रेम का पावन वातावरण पैदा हो जाता है। अतः पांच दैनिक नमाज़ों का एक मुख्य उद्देश्य इस्लाम धर्म के बंधुत्व तथा समानता विषयक सिद्धांतों को व्यवहार में लाना भी है।

यद्यापि निश्चित वक्तों पर निश्चित तरीके से नमाज़ आदा करने को अनिवार्य ठहरा कर इस्लाम ने उपासना को एक स्थाई रूप दे दिया है ,लेकिन व्यक्तिगत रूप में उपासक के लिए काफ़ी आज़ादी भी रख दी है। विशेषकर "*नफ़ल*" نفل नमाज़ों में वह *क़याम* قیام (खड़े रहने की मुद्रा) ,*क़ऊद* قعود (बैठने की मुद्रा) , *रुकूअ* رکوع (झुकने की मुद्रा) और *सजदा* سجدہ — इन चारों मुद्राओं में जिस तरह चाहे ,जिस भाषा में चाहे प्रभु के आगे अनुनय-विनय कर अपनी याचना पेश कर सकता है।

रोज़ा (=उपवास)

जिन धार्मिक कृत्यों एवं संस्कारों को इस्लाम ने नया अर्थ और भाव प्रदान किया उन में रोज़ा भी एक है। यों तो उपवास को सभी धर्मों ने एक प्रमुख

धार्मिक कृत्य के रूप में मान्यता दे रखी है। लेकिन इस्लाम ने उपवास द्वारा रूठे ईश्वर को मनाने या अपने आप को कष्ट पहुँचा कर परमात्मा के दयाभाव को जगाने जैसे विचारों को एकदम अस्वीकारा है। इस के विपरीत इस्लाम ने उपवास को एक विधिवत रूप देकर आध्यात्मिक ,नैतिक तथा शारीरिक संयम एवं अनुशासन का सर्वोच्च साधन बना दिया। कुर्आन शरीफ़ में उपवास के मूल उद्देश्य को यों प्रतिपादित किया गया है :

يَـٰٓأَيُّهَا ٱلَّذِينَ ءَامَنُوا۟ كُتِبَ عَلَيْكُمُ ٱلصِّيَامُ كَمَا كُتِبَ
عَلَى ٱلَّذِينَ مِن قَبْلِكُمْ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُونَ

"हे लोगो जो ईमान लाये हो ! तुम्हारे लिए रोज़े अनिवार्य ठहराये गए हैं जैसे उन लोगों के लिए अनिवार्य ठहराये गए जो तुम से पहले थे ,ताकि तुम बुराई से बचो" (कुर्आन 2 : 183)।

इस्लाम ने रोज़ों के लिए *रमज़ान* का पूरा महीना नियत कर रखा है। इस पावन महीने में रोज़ेदार को भोर से सूर्यास्त तक खानपान और संभोगादि से रुकना पड़ता है। इसके साथ साथ रोज़ेदार को हर प्रकार के कुकर्म से बचना होता है। अल्लाह के आदेश हेतु खानपान छोड़ देना ,वास्तव में भक्त को यह समझाना है ,कि जब इन्सान प्रभु की आज्ञानुसार अपनी वैध वस्तुओं और इच्छाओं को छोड़ सकता है ,तो उसके लिए उन बुराइयों से बचना कितना ज़रूरी हो जाता है जिन का प्रभु ने निषेध कर रखा है।

जब इन्सान के पास खानपान की मनपसन्द वस्तुएं मौजूद हों तो भूख और प्यास बुझाने की इच्छा से बढ़ कर कोई इच्छा नहीं ,लेकिन रोज़ेदार इस प्रबल स्वाभाविक इच्छा को भी काबू में रखता है। सिर्फ एक या दो दिन तक नही कि कोई इसे संयोग कह दे ,बल्कि यह अभ्यास पूरे एक महीने जारी रहता है। इस का मात्र उद्देश्य प्रभु का अधिकाधिक सामीप्य प्राप्त करना है। जब भी कोई तुच्छ इच्छा रोज़ेदार को प्रलोभित करना चाहती है तो वह तत्काल उसका दमन कर देता है ,क्योंकि उसका अन्तरमन पुकार उठता है: *"मेरा परमेश्वर मेरे साथ है","वह मुझे निहार रहा है"*। इस प्रकार परमात्मा

की उपस्थिति उसके लिए एक हक़ीक़त बन जाती है ,और उस के भीतर एक नवीन जीवन का अहसास जाग उठता है ,जो इस खानपान रूपी जीवन से अति उच्च है — *यही आध्यात्मिक जीवन है*।

हज्ज حج

मुसलमान के लिए ज़रूरी है कि वह उम्र में एक बार मक्का स्थित *कअबा* शरीफ़ का *हज्ज* (=तीर्थयात्रा) करे ,बशर्तेकि वह इस का सामर्थ्य रखता हो। *हज्ज* साधक के आध्यात्मिक विकास का अन्तिम चरण है। इस में साधक प्रभुइच्छा के आगे अपना सर्वस्व अर्पित कर देता है। वह अपने सारे सुख , सारी इच्छाएं भूल कर प्रभु के प्रेम में तल्लीन हो जाता है। *हज्ज* में हाजी का पहला काम احرام *"इहराम"* बांधना है ,यानि अपने सारे कीमती वस्त्र उतार कर दो अनसिल्ली चादरें धारण कर लेना.। यह मानो इस बात का व्यवहारिक प्रतीक है कि हाजी प्रभु-प्रेम के निमित अपने समस्त भौतिक संबंध तोड़ने के लिए तैयार है। *हज्ज* में हाजी का दूसरा काम طواف *"तवाफ़"* है ,यानि कअबा शरीफ़ की परिक्रमा करना। इस परिक्रमा द्वारा हाजी यह दिखाना चाहता है कि उसके सीने में प्रभु-प्रेम की अग्नि भड़क उठी है। अतः एक सच्चे प्रेमी की भांति वह अपने प्रियतम के घर की परिक्रमा करता है। वास्तव में हाजी की संपूर्ण दशा ,और *हज्ज* के सारे श्रद्धायुक्त कृत्य भक्ति के उस चरण के परिचायक हैं ,जहां पहुँच कर साधक प्रभु के सच्चे प्रेम में इतना रंग जाता है कि अपने प्रिय स्वामी की प्रसन्नता हेतु समस्त इच्छाओं की आहुति के साथ साथ अपना सर्वस्व उसकी सेवा में अर्पित कर देता है।

हज्ज के पावन अवसर पर मक्का में हर वर्ष एक अद्भुत एवं विराट् धर्मसम्मेलन का आयोजन होता है ,जिस में संसार के सभी भूभागों से आये हुए लाखों मुसलमान शामिल होते हैं। सब के दिलों में एक ही भावना ,एक ही तड़प होती है — वह यही कि परमेश्वर की मौजूदगी ,उसकी सर्वव्यापकता को महसूस करें। सभी का ध्यान अपने प्रभु पर केन्द्रित रहता है ,क्योंकि उस समय परमात्मा ही उन का एकमात्र लक्ष्य होता है। हाजियों की बाहरी एकता

एवं एकरूपता भी इस भाव की अभिवृद्धि में सहायक बन जाती है। क्योंकि सभी जन दो अनसिल्ली चादरें धारण किये बारंबार एक ही वाक्य उच्च स्वर में दोहराते हैं —لَبَّيْكَ اَللّٰهُمَّ لَبَّيْك *"लबैक अल्लाहुम लबैक"* ,अर्थात् *"हम उपस्थिति हैं ,हे अल्लाह ! तेरी सेवा में उपस्थित हैं"*। ध्यान रहे कि अल्लाह की उपस्थिति किसी स्थान विशेष तक सीमित नहीं ,अतः यह कहना गलत है कि सर्वव्यापी परमात्मा अन्य स्थानों को छोड़ सिर्फ़ मक्का में ही बिराजामान है। किन्तु हाजियों का यह विराट् जनसमूह परमात्मा की उपस्थिति को सच मुच अपने मध्य महसूस करता है। यह अद्भुत एवं उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूति किसी एकांत में छिपे वैरागी का व्यक्तिगत अनुभव नहीं ,बल्कि उस विराट् जनसमूह का सामूहिक अनुभव है जो मक्का में एक ख़ास उद्देश्य के अन्तर्गत एकत्र होता है।

यह जो इन्सानों ने जातिवाद ,राष्ट्रवाद ,वर्णवाद ,पूंजीवाद जैसे कँटीले भेदभाव उत्पन्न कर रखे हैं ,*हज्ज* में इन के यथोचित समाधान की पूरी क्षमता है। दुनिया का अन्य कोई धार्मिक अनुष्ठान इस मामले में *हज्ज* की तुलना नहीं कर सकता। क्योंकि *हज्ज* के पावन समारोह में संसार के सभी भूभागों से आये हुए लोग ऊँच नीच के सभी भेदभाव त्याग देते हैं ,और परमात्मा के सच्चे भक्तों की भांति एक दूसरे से सप्रेम मिलते हैं। *हज्ज* एक अति विराट् जनसमूह है ,जिस में सभी जनों का लिबास एकसमान ,सभी एक ही पथ के अनुगामी और सभी की ज़ुबान पर एक ही वाक्य रहता है। इस प्रकार हर मुसलमान को अपने जीवन काल में कम से कम एक बार समानता के इस तन्ग द्वार से गुज़ार कर बन्धुत्व के सुविशाल मैदान में पहुँचाया जाता है। यों तो जन्म और मरण की दृष्टि से सभी इन्सान एकसमान होते हैं ,लेकिन *हज्ज* वह एकमात्र अवसर है जब उनको व्यवहारिक रूप में एकसमान जीना , एकसमान कार्य करना और एकसमान अनुभव करना सिखलाया जाता है।

उपासना का सार्थक स्वरूप

ज़ाहिर है कि इस्लाम के इन सब आदेशों का मात्र उद्देश्य इन्सान का

आध्यात्मिक उत्थान है। इस्लामी कर्मकांड का ऐसा कोई अंग नहीं जिस को अर्थहीन उपासना की संज्ञा दी जा सके। इस्लाम के सभी आदेशों का एकमात्र ध्येय भक्त के हृदय का शोधन है ,ताकि वह पवित्र हो कर पवित्रता के मूलस्रोत यानि परमात्मा का सामीप्य प्राप्त कर सके। इस्लाम ने पूजा-अर्चना की एक ऐसी पद्धति इन्सान के दैनिक जीवन में शामिल कर दी है जो सर्वथा व्यवहारिक है , इस्लाम वैराग के लिये भक्त को विवश नहीं करती। पांच वक्त की नमाज़ के लिए इन्सान को थोड़े से वक्त की कुर्बानी अवश्य देना पड़ती है। इस का उसे के दैनिक कारोबार पर कोई प्रतिकूल असर नहीं पड़ता ,हाँ आंतरिक संतोष की प्राप्ति में सहायता ज़रूर मिलती है। रोज़ा में मुसलमान को खाने पीने से रोका ज़रूर गया है ,लेकिन इस तरीका से नहीं कि रोज़ा उसके दैनिक कारोबार में बाधा बन जाए। *हज्ज* आम तौर पर उम्र में एक बार किया जाता है। सर्वोच्च आध्यात्मिक अनुभूतियों से गुज़रने के बावजूद *हज्ज* में भी साधक के दैनिक कारोबार पर कोई ख़ास असर नहीं पड़ता।

10. मनुष्य के मनुष्य के प्रति कर्तव्य

इस्लामी शिक्षाओं की दूसरी शाखा का संबंध حقوق الناس *"हकूकुन्नास"* यानि मनुष्य के मनुष्य के प्रति कर्तव्यों से है। किन्तु ध्यान रहे कि इस्लामी शिक्षाओं की जिस शाखा का संबंध حقوق الله *"हकूकुल्लाह"* यानि मनुष्य के अल्लाह के प्रति कर्तव्यों से है ,वह और यह शाखा अलग अलग नहीं बल्कि परस्पर जुड़ी हुई हैं। इन्सान का नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान — यही कुर्आन शरीफ़ का प्रमुख विषय है। और इस्लाम ने इसी को अपना अन्तिम लक्ष्य घोषित किया है। फलतः इस की समस्त शिक्षाओं का मात्र ध्येय मानवसमाज को नैतिकता एवं आध्यात्मिकता के उस सर्वोच्च शिखर तक पहुँचाना है ,जहाँ तक मनुष्य पहुँच सकता है। *"जो व्यक्ति अपने भाई के अधिकारों का उल्लंघन करता है वह (वास्तव में) अल्लाह के एकत्व पर विश्वास नहीं रखता"* ,हज़रत पैग़म्बरश्रीﷺके इस पावन कथन को सोने के

अक्षरों में लिखा जाना चाहिए। इस दिव्य कथन से साबित होता है कि حقوق الله *"हकूकुल्लाह"* की शाखा حقوق الناس *"हकूकुन्नास"* वाली शाखा से अलग नहीं ,दोनों परस्पर जुड़ी हुई हैं।

इस्लाम का अपूर्व बन्धुत्व

इस्लाम ने सब से पहले वे सारे भाद-भाव समाप्त कर दिये जो इन्सानों के बीच नफ़रत और घृणा पैदा करते हैं। फरमाया :

إِنَّ أَكْرَمَكُمْ عِندَ ٱللَّهِ أَتْقَىٰكُمْ

"निस्संदेह तुम में से अल्लाह की दृष्टि में महानतम वही है जो सब से अधिक कर्तव्यनिष्ट हो" (कुर्आन 49 : 13)।

इस दिव्य वाक्य ने ऊँच-नीच और जात-पात के सभी भेदभाव समाप्त कर दिये। इसी पावन भाव की पूर्ति हेतु कुर्आन शरीफ़ ने यह मंगलमय घोषणा भी कर दी कि सब इन्सान एक ही विराट् परिवार के सदस्य हैं :

يَٰٓأَيُّهَا ٱلنَّاسُ إِنَّا خَلَقْنَٰكُم مِّن ذَكَرٍ وَأُنثَىٰ وَجَعَلْنَٰكُمْ شُعُوبًا وَقَبَآئِلَ لِتَعَارَفُوٓا۟ ۚ إِنَّ أَكْرَمَكُمْ عِندَ ٱللَّهِ أَتْقَىٰكُمْ

"हे संसारवासियो ! हम ने तुम्हें एक पुरुष और एक स्त्री से उत्पन्न किया और तुम्हारे वंश और कबीले बनाए ताकि तुम एक दूसरे को पहचानो। निस्संदेह तुम में से अल्लाह की दृष्टि में महानतम वही है जो सब से अधिक कर्तव्यनिष्ट हो" (कुर्आन 49 : 13)।

इस प्रकार इस्लाम एक सुविशाल विश्वव्यापी बरादरी की नींव डाल देता है, जिस में कोई भी व्यक्ति — स्त्री हो या पुरुष — बिना किसी वंशीय जातीय,राष्ट्रीय या आर्थिक भेदभाव के प्रविष्ट हो सकता है। इस अपूर्व बन्धुत्व के अन्तर्गत सभी को एकसमान अधिकार प्राप्त होते हैं ,किसी की मजाल नहीं कि वह दूसरों के अधिकारों में हस्तक्षेप कर सके। इस विराट् बन्धुत्व के सदस्यों का प्रथम कर्तव्य यही है कि वे अन्य सदस्यों को एक ही

परिवार का सदस्य जानें। इस विश्वव्यापी बरादरी के किसी भी सदस्य को जातीय ,व्यवसायिक या लैंगिक आधार पर अपने मौलिक अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता। इस्लाम वह एकमात्र धर्म है जिस ने गुलामों को आज़ाद करने का आदेश दिया। इस्लाम इस मामले में भी अद्वितीय है कि इस के पावन संस्थापक[ﷺ]ने स्वयं दासों को दासतामुक्त कर एक अद्भुत व्यक्तगत आदर्श प्रस्तुत किया।[1] मालिक को यह भी आदेश था कि वह अपने दास को अपना भाई समझे और उसे वही लिबास पहनने को दे जो स्वयं पहने,और खाने को वही खाना दे जो स्वयं खाए (*बुख़ारी* 2 : 21)। इस्लामी शिक्षानुसार दास का किसी भी प्रकार से अपमान या तिरस्कार जाइज़ नहीं। इस्लमाम का यह सुखद बन्धुत्व सिर्फ़ सिद्धांत तक ही सीमित न रहा बल्कि हज़रत पैग़म्बरश्री[ﷺ],आपके उत्तराधिकारी *ख़लीफ़ों* और आपके *सहाबा* (=अनुयायी वर्ग) के अमली नमूना ने इसे एक जीवंत वास्तविकता का रूप दे दिया। हज़रत पैग़म्बरश्री[ﷺ]का स्पष्ट आदेश था :

"तुम में से कोई भी व्यक्ति तब तक ईमान को प्राप्त नहीं हो सकता जब तक वह अपने भाई के लिए वही बात पसन्द न करे जो स्वयं अपने लिए पसन्द करता है" (*बुख़ारी* 2 : 7)।

औरतों के अधिकार

औरत के स्थान को उच्चता के शिखर तक पहुँचाने में जो अद्भुत भूमिका कुर्आन शरीफ़ और हज़रत पैग़म्बरश्री[ﷺ]ने निभाई है उसका लेशमात्र भी किसी और पैग़म्बर-अवतार या धर्मगन्थ से सम्पन्न न हो पाया। इस्लाम की शिक्षानुसार औरत को भौतिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में वही स्थान प्राप्त है जो मर्द को प्राप्त है। मनुष्य जिस सर्वोच्च दिव्य वरदान का पात्र बन सकता है वह *वह्य* या ईश्वणी है। और कुर्आन शरीफ़ ने यह बात स्पष्ट शब्दों में बता

1. हज़रत पैग़म्बरश्री[ﷺ]द्वारा आज़ाद किये गए गुलामों के नाम ये हैं ,(1) ज़ैद इबन हारिसा (2) सौबान यमनी ,(3) अबूराफ़िअ प्रथम ,(4) अबूराफ़िअ द्वितीय ,(5) शक़रान हबशी ,(6) अबू कबशा ,(7) ज़ैद इबन बौला हबशी ,(8) उम्मे ऐमन ,(9) सलमा {हज़रत पैग़म्बरश्री[ﷺ]के सुपुत्र इब्राहीम की आया} ,(10) सलमान फ़ारसी।

दी है कि यह दिव्य वरदान पुरुषों की तरह स्त्रियों को भी प्रदान किया गया। मिसाल के तौर पर :

وَأَوْحَيْنَآ إِلَىٰٓ أُمِّ مُوسَىٰٓ

"और हम ने मूसा की माता की ओर वह्य भेजी" (कुर्आन 28 : 7)।

وَإِذْ قَالَتِ ٱلْمَلَٰٓئِكَةُ يَٰمَرْيَمُ إِنَّ ٱللَّهَ ٱصْطَفَىٰكِ

"और जब फ़रिश्तों ने कहा : 'हे मरयम ! अल्लाह ने तुझे चुन लिया है' ।" (कुर्आन 3 : 42)

कुर्आन की शिक्षानुसार कर्मफल के मामले में भी मर्द और स्त्री एकसमान हैं। फ़रमाया :

أَنِّى لَآ أُضِيعُ عَمَلَ عَٰمِلٍ مِّنكُم مِّن ذَكَرٍ أَوْ أُنثَىٰ

"मैं तुम में से किसी कर्त्ता के कर्म को व्यर्थ नहीं करता — पुरुष हो या स्त्री" (कुर्आन 3 : 195)

وَمَن يَعْمَلْ مِنَ ٱلصَّٰلِحَٰتِ مِن ذَكَرٍ أَوْ أُنثَىٰ وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَأُو۟لَٰٓئِكَ يَدْخُلُونَ ٱلْجَنَّةَ وَلَا يُظْلَمُونَ نَقِيرًا

"जो कोई अच्छे कर्म करे , चाहे पुरुष हो या स्त्री ,और वह ईमान वाला भी हो तो यही स्वर्ग में प्रविष्ट होंगे और उन पर तनिक भी जुल्म न किया जाये गा" (कुर्आन 4 : 124)।

مَنْ عَمِلَ صَٰلِحًا مِّن ذَكَرٍ أَوْ أُنثَىٰ وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَلَنُحْيِيَنَّهُۥ حَيَوٰةً طَيِّبَةً

وَلَنَجْزِيَنَّهُمْ أَجْرَهُم بِأَحْسَنِ مَا كَانُوا۟ يَعْمَلُونَ

"जो कोई अच्छे कर्म करता है ,मर्द हो या स्त्री और वह ईमान वाला है ,हम अवश्य उसे एक पवित्र जीवन में जीवित रखें गे ,और हम उन्हें उनके उत्तम कर्मों का जो वे करते थे प्रतिफल दें गे" (कुर्आन 16 : 97)।

وَمَنْ عَمِلَ صَٰلِحًا مِّن ذَكَرٍ أَوْ أُنثَىٰ وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَأُولَٰٓئِكَ
يَدْخُلُونَ ٱلْجَنَّةَ يُرْزَقُونَ فِيهَا بِغَيْرِ حِسَابٍ ﴿٤٠﴾

"जो कोई अच्छे कर्म करे ,चाहे पुरुष हो या स्त्री ,और वह ईमान वाला भी हो तो यही स्वर्ग में प्रविष्ट होंग ,उस में अपार जीविका प्रदान की जाए गी"।

(कुर्आन 40 : 40)

यही भाव (कुर्आन 33 : 35) में प्रकट किया गया है।तात्पर्य यह कि कुर्आन के स्पष्ट आदेशानुसार स्त्री और पुरुष दोनों नैतिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में एकसमान उन्नति कर सकते हैं। जिस स्थान को मर्द प्राप्त हो सकता है उस स्थान को औरत भी पा सकती है।

सांसारिक मामलों में भी औरत को मर्द के समान माना गया है। वह धन कमा सकती है ,संपत्ति बना सकती है ,मर्द की भांति उसे भी मिल्कियत का अधिकार हासिल है। कुर्आन शरीफ़ फ़रमाता है :

لِّلرِّجَالِ نَصِيبٌ مِّمَّا ٱكْتَسَبُوا۟ ۖ وَلِلنِّسَآءِ نَصِيبٌ مِّمَّا ٱكْتَسَبْنَ ۚ

" पुरुषों के लिए उसका हित-लाभ है जो वे कमाएं ,और स्त्रियों के लिए उसका हित-लाभ है जो वे कमाएं" (कुर्आन 4 : 32)।

औरत को अपनी धन-संपत्ति पर पूरा-पूरा अधिकार है ,वह उसे अपनी इच्छानुसार जिस तरह चाहे खर्च कर सकती है। और यह एक ऐतिहासिक वास्तविकता है कि हज़रत पैगम्बरश्री[सल्ल]के शुभागमन के समय अरब देश में औरत को मिल्कियत का अधिकार हासिल न था। स्वयं उसी को संपत्ति का भाग माना जाता था ,विरासत का बटवारा करते समय उसका भी भटवारा कर दिया जाता। कुर्आन शरीफ़ ने औरत को पतन के इस पंकिल गर्त से निकाला और मानसम्मान के उस उच्च स्थल पर आसीन कर दिया जहां उसे मर्दों की भांति धनसंपत्ति और विरासत में मिल्कियत का अधिकार मिल गया।[1] ध्यान

1 एक प्रमुख पाश्चात्य विद्वान विल डूरन्ट (Will Durant) अपनी सुप्रसिद्ध कृत्ति "The Age of Faith" में कहता है : "(हज़रत पैगम्बरश्री[सल्ल]) ने कानूनी मामलों और आर्थिक स्वतन्त्रता (जारी है)

रहे कि पश्चिमी देशों में औरत को ये बुनियादी अधिकार एक लम्बे संघर्ष के बाद हाल ही में प्राप्त हो पाये हैं।

समाज का नैतिक स्तर बुलन्द रखने के लिए इस्लाम स्त्री और पुरुष दोनों को अश्लीलता से बचने और एक दूसरे की मौजूदगी में नज़रें नीची रखने का आदेश देता है। घर से बाहर निकलते समय ,या ऐसे अवसरों पर जहां स्त्री पुरुष का मेल जोल अनिवार्य हो ,इस्लाम औरत को ऐसा अनुकूल लिबास धारण करने का आदेश देता है जो उसकी नग्नता तथा उसके शारीरिक सौंदर्य को ढक दे ,ताकि पुरुषों की कामवासना भड़क न उठे।[1] इस सावधानी के साथ औरत को घर से बाहर निकलने और कोई भी जाईज़ कारोबार करने की पूरी आज़ादी है।

समाज में औरत को जो व्यक्तिगत स्थान हासिल है वह पत्नी के रूप में भी क़ायम रहता है। उसका व्यक्तित्व उस के पति के व्यक्तित्व में गुम नहीं हो जाता। हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]के एक कथनानुसार पत्नी अपने पति के घर की शासक होती है ,हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]के शब्द ये हैं :

"तुम में से हर कोई हाकिम है ,अतः तुम में से हर किसी से उसकी प्रजा के विषय में पूछा जाए गा। बादशाह भी हाकिम है उस से उसकी जनता के बारे में पूछा जाए गा। मर्द अपने घर वालों का हाकिम है उस से उसकी प्रजा के

पिछले नोट का शेष भाग :

की दृष्टि से औरत को मर्द के साथ एक की स्तर पर ला खड़ा किया। इस्लाम में औरत कोई भी जाइज़ पेशा अपना सकती है। वह अपनी जाइज़ कमाई की स्वयं मालिक है। (मर्दों की तरह) विरासत में हिस्सा पा सकजी है। अपनी संपत्ति को अपनी मर्ज़ी से बेच सकती है ..... हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]ने माँ को बेटे की विरासत बन जाने की अरब परंपरा को समाप्त कर दिया। अब औरत भी मर्द के आधे हिस्से के बराबर विरासत पासकती थी ,उसकी मर्ज़ी के बिना उसकी शादी भी नहीं की जा सकती थी।" (पृ. 181–183)

1. हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]ने एक बार एक जवान लड़की को अपर्याप्त लिबास में देखा तो फ़रमाया : " हे अस्माअ ! जब औरत बालिग़ हो जाए ,तो उचित नहीं कि उसके शरीर का सिवाय इस और इस अंग के और कुछ नजर आये ,हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल] ने अपने चहरे तथा हाथों की ओर इशारा किया"(अबू दाऊद 31 : 30)। ध्यान रहे कि इस्लाम में औरत के लिए बुर्क़ा पहनने का कोई आदेश नहीं।

बारे में पूछा जाए गा ,और औरत अपने पति के घर की शासक है ...... ।'
(*बुख़ारी* 11 : 11)

तलाक़ के मामले में भी —जब पति–पत्नी के बीच सुलह सफ़ाई की तमाम कोशिशें विफल हो जाएं और तलाक निश्चित हो जाए —कुआर्न शरीफ दोनों पक्षों को समान अधिकार देता है। औरत को मर्द की तरह यह हक दिया गया है कि वह خلع *खुलाह'* द्वारा अपना पिंड छुड़ा ले।

प्रशासन

हज़रत पैगम्बरश्री^सल्ल^ने न सिर्फ एक धर्म की बल्कि एक राज्य की स्थापना भी की। इस्लामी राज्य का मूलाधार जनतन्त्र है। किन्तु इस लोकतन्त्र में शासक वर्ग स्वयं को इन्सानों से ज़यादा अल्लाह के प्रति उत्तरदायी समझता है। आशय यह कि इस्लामी राजनीति लोकतन्त्र और अध्यात्मवाद का सुन्दर सम्मिश्रण है ,इस वास्तविकता को कुर्आन शरीफ़ की इस आयत में दर्शाया गया है : وَالَّذِينَ اسْتَجَابُوا لِرَبِّهِمْ وَأَقَامُوا الصَّلَوٰةَ وَأَمْرُهُمْ شُورَىٰ بَيْنَهُمْ وَمِمَّا رَزَقْنَاهُمْ يُنفِقُونَ

''और जो लोग अपने रब की आज्ञाओं का पालन करते हैं और नमाज़ को कायम करते हैं ,उनका काम आपस में विचारनिमर्श द्वारा होता है ,और वे उस में से व्यय करते हैं जो हम ने उन्हें प्रदान किया है'' (कुर्आन 42 : 38)।

इस आयत में मुसलमानों को लोकतन्त्र का मूलभूत नियम —*''उनका काम आपस में विचारनिमर्श द्वारा होता है''*—सिखाया गया है। अर्थात् वे प्रशासन का सारा काम काज इसी लोकतन्त्रीय नियम के अन्तर्गत चलाएं। इस के साथ ही उनको यह सीख भी दी गई है कि वे अपने अन्दर वे सद्गुण पैदा कर लें जिन से उन के भीतर आध्यात्मिकता का संचार हो और वे अल्लाह के निकट आ जाएं। तात्पर्य यह कि इस्लाम शासक वर्ग के

1. जब मर्द बीवी को छोड़ना चाहे तो ''तलाक''शब्द का प्रयोग होता है ,और जब औरत काज़ी या अदालत द्वारा पति से पिंड छुड़ाना चाहे तो ''खुलाह'' शब्द प्रयुक्त होता है।

मनमस्तिष्क में यह बात पूरी तरह अंकित कर देता है कि वह अपने हर काम के लिए परमात्मा के सामने जवाबदेह है ,और यह कि राजनीति तथा राज्यशक्ति को उस ने न्याय और नैतिक मर्यादाओं के अधीन रखना है। यही वजह है कि इस्लामी शिक्षानुसार सत्ता या प्रशासन का कार्यभार उन्हीं लोंगों को सौंपा जाना चाहिए जो उसके योग्य हों ,अर्थात् जिन का नैतिक एवं आध्यात्मिक स्तर काफ़ी बुलन्द हो। इसी लिए राज्य के प्रधान (Head of the state) को امیر *"अमीर"* (यानि *आदेश देने वाला*) और امام *"इमाम"* (यानि *जिसके नैतिक आदर्श का अनुसरण किया जाए*) की संज्ञा भी दी गई है।

इस्लामी प्रशासन के नियमों और सिद्धांतों की व्यवहारिक व्याख्या स्वयं हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]ने प्रस्तुत कर दी है। क्योंकि आप इस्लामी राज्य के संस्थापक ही नहीं बल्कि पहले बादशाह भी थे। आपके देहांत के पश्चात् आप के पहले चार उत्तराधिकारियों (*ख़लीफ़ों*) ने आदर्श जनतन्त्र ,उच्च नैतिकता और पवित्र आचरण का प्रदर्शन कर इस्लमी शासन के सही रूप को पेश किया। उनका शासनकाल सही मानों में एक जनतन्त्रीय प्रशासन था। *ख़लीफ़ा* का चुनाव जनता के बहुमत से होता था। *ख़लीफ़ा* राज्य का एक सेवक होता था ,अन्य कर्मचारियों की तरह उसे भी सरकारी जनकोश से निश्चित वेतन मिलता था। वह किसी विशेष सुविधा या प्राधिकार का हकदार न था। क्योंकि स्वयं हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]ने अपने लिए कोई विशेषाधिकार या रियायत न माँगी थी। इस्लामी जनतन्त्र वंशीय ,जातीय तथा सामाजिक भेदभावों से अपरिचित था। इसके अन्तर्गत सभी लोगों के आधिकार एकसमान थे। शासक और जनता ,दोनों वर्ग एक जैसे नियमों के अधीन थे।

प्रशासन का कार्यभार केवल उन को सौंपा जाता था जो सही मानों में उसके योग्य थे। अपनी सेवाओं को जनहित में समर्पित कर देना उनका परम कर्तव्य था। पदाधिकारियों को स्पष्ट आदेश था कि वे अति सरल और सादा जीवन बसर करें। अपने भवनों के द्वार फ़रियादी और शिकायतकर्ता के प्रति बन्द न रखें ,बल्कि ऐसी नीति अपनाएं कि लोग आसनी से उन तक पहुँच सकें। जो लोग जीविका कमाने योग्य न हों उनके भोजन की व्यवस्था करें।

ग़ैरमुस्लिमों के अधिकारों की रक्षा मुसलमानों के अधिकारों की भांति करें। इस्लामी प्रशासन में जनता का प्रथम कर्तव्य यह है कि वे हकूमत के आदेशों का उस वक्त तक पालन और सम्मान करते रहें जब तक उन में अल्लाह और उसके रसूल[सल्ल] की आज्ञाओं की खुली अवज्ञा न हो। हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल] के पहले उत्तराधिकारी (*ख़लीफ़ा*) हज़रत अबूबक्र[रज] ने अपने पहले ही भाषण में साफ़ साफ़ कह दिया था :

"मुझे सत्ता सौंपी गई है ,मेरे मन में इस पद की कोई इच्छा नहीं ,मैं यही चाहता था कि तुम में से कोई और इस पद को संभाल लेता ..... ध्यान से सुनो ! मैं एक साधारण मनुष्य हूँ तुम में से किसी से उत्तम नहीं हूँ। मेरी सहायता करो जब मैं सीधे मार्ग पर चलूँ ,मुझे सुधारो यदि में गलत चलूँ। मेरी बात सिर्फ़ उस वक्त तक मानो जब तक में अल्लाह और उसके रसूल[सल्ल] की आज्ञाओं का पालन करूँ। यदि में उनकी अवज्ञा करूँ तो मेरा कोई अधिकार नहीं कि तुम से अपनी बात मनवाऊँ।"

आशय यह कि लोगों का प्रथम कर्तव्य यही था कि वे अपने पदाधिकारियों की *"गलतियाँ सुधारें"*। हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]का एक पवित्र कथन यह है :

اَفْضَلُ الْجِهَادِ مَنْ قَالَ كَلِمَةَ حَقٍّ عِنْدَ سُلْطَانٍ جائر

"अति उत्तम जिहाद यह (भी) है कि एक ज़ालिम शासक के सामने सच बात कह दी जाए" (*मिश्कात* 16 : 1)।

सच्चे इस्लामी प्रशासन की कुछ शिक्षाप्रद घटनाएं

हज़रत अबू बक्र[रज] के देहांत के बाद हज़रत उमर[रज] ख़ीफ़ा नियुक्त हुए। आप के शासन काल में इस्लामी राज्य में अरब ,इराक़ ,ईरान ,फ़लस्तीन और मिस्र शामिल थे। इस काल के अनेक उदाहरण ऐसे हैं जिन को मुस्लिम लोकतन्त्र का वास्तविक एवं व्यवहारिक चित्र कहा जा सकता है। हज़रत उमर[रज]के शासन काल में दो विचार समितियां होती थीं। एक समिति सार्वजनिक थी

जिस में राज्य के महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर विचारविमर्श होता था। दूसरी समिति شورى *"शूरा"* कहलाती थी ,यह सार्वजनिक समिति से छोटी होती थी ,इस में राज्य के दैनिक मामलों पर बहस और फैसले होते थे। विचार विमर्श में ग़ैरमुस्लिमों को भी शामिल किया जाता था। सूबों और प्रदेशों के राजपाल स्थानीय लोगों के विचारविमर्श के बाद ही नियुक्त किये जाते थे। यदि किसी राजपाल के खिलाफ़ जनता शिकायत करती ,तो राजपाल के कसूरवार साबित होने पर उसे तत्काल हटा दिया जाता। सरकारी पदाधिकारियों से शपथ ली जाती कि वे ठाट बाट से बचें गे ,सादा लिबास और सादा जीवन जीएं गे ,ज़रूरतमन्दों के लिए अपने दरवाज़े सदा खुले रखें गे ,उनके द्वार के आगे कोई रक्षक या द्वारपाल न होगा।

इस्लामी राज्य के प्रत्येक नागरिक को —मुसलमान हो या ग़ैरमुस्लिम औरत हो या मर्द — यह अधिकार हासिल था कि वह अपने विचार और मत को पूरी आज़ादी के से प्रकट करे। एक बार हज़रत उमर[रज़]जुमा का خطبه *खुतबा* (प्रवचन) दे रहे थे। आप ने *खुतबा* में औरतों के مهر *"महर"* की अधिकतम सीमा चार सौ दिरहम घोषित की। प्रवचन के बाद एक औरत ने हज़रत उमर[रज़]को टोका ,और कहा ,हे उमर ! जिस बात को अल्लाह की किताब वैध ठहराती है उसे अवैध कहने का आपको कोई हक़ नहीं, कुर्आन शरीफ़ में साफ़ आया है :

وَءَاتَيْتُمْ إِحْدَىٰهُنَّ قِنطَارًا فَلَا تَأْخُذُوا۟ مِنْهُ شَيْـًٔا

"और (यदि) तुम उन में से एक (पत्नी) को सोने का ढेर दे चुके हो तो उस में से कुछ वापस न लो" (कुर्आन 4 : 20)।

हज़रत उमर[रज़]ने कहा ,*हे अल्लाह ! क्षमा करना सब लोग उमर से अधिक बुद्धिमान हैं।*[1] एक अन्य कथनानुसार फ़रमाया ,*मदीना की औरतें उमर से ज़्यादा बुद्धिमान हैं।*[2] कानून की नज़र में *ख़लीफ़ा* (बादशाह) और एक

1. *कन्ज़ अल्–उम्माल* ,जिल्द 22 ,पृ.106।
2. वही पृ.107।

आम नागरिक बराबर थे। अतएव जब एक बार आप पर मुकदमा दायर हुआ तो आप एक आम नागरक की भांति अदालत में हाज़िर हुए और अपनी सफाई पेश की। फल यह कि हज़रत उमर[रज़]के शासन काल में लोकतन्त्रीय प्रणाली उस आदर्श चरम सीमा को पहुँच चुकी थी जिस की आधुनिक युग कल्पना भी नहीं कर सकता।

जिहाद جِهَاد

जिहाद मुसलमान का एक धार्मिक कर्तव्य है। किन्तु इस विषय में काफ़ी गलत फ़हमी पाई जाती है। *जिहाद* का शाब्दिक अर्थ है ,*घोर परिश्रम करना, भरपूर कोशिश करना*। इस्लामी परिभाषा में इस का अर्थ है : (1) *धर्म का प्रचार व प्रसार करना* ,(2) *पूरी शक्ति के साथ धर्म की रक्षा करना*। धम-प्रचार व प्रसार का महा कार्य एक स्थाई *जिहाद* है ,जो प्रत्येक मुसलमान हर समय कर सकता है। जबकि दूसरी प्रकार के जिहाद की ज़रूरत कभी कभी ,बाज़ विशेष परिस्थितियों में ही पड़ती है।

कुर्आन शरीफ़ के अनुसार جِهَادًا كَبِيرًا *"जिहादन कबीरा"* यानि बड़ा *जिहाद* वही है जो कुर्आन अर्थात् उस की शिक्षा द्वारा कार्यान्वित होता है :

فَلَا تُطِعِ ٱلْكَٰفِرِينَ وَجَٰهِدْهُم بِهِۦ جِهَادًا كَبِيرًا

"अतः काफ़िरों की बात न मान और इस (कुर्आन) के साथ उन से वह जिहाद कर जो महा जिहाद है" (कुर्आन 25 : 52)।

अतः इस्लाम का सब से बड़ा जिहाद वह नहीं जो लोहे की तलवार से लड़ा जाता है ,बल्कि वह है जो कुर्आन की शिक्षा द्वारा कार्यान्वित होता है। यानि समस्त जातियों और राष्ट्रों में कुर्आन की शिक्षाओं का शांतिपूर्ण प्रचार-प्रसार ही *महा जिहाद* है। इस कार्य में किसी भी प्रकार का बल या ज़ोरज़बरदस्ती जाइज़ नहीं ,क्योंकि कुर्आन शरीफ़ साफ़ शब्दों में इसे अवैध घोषित कर चुका है : لَآ إِكْرَاهَ فِى ٱلدِّينِ ۖ قَد تَّبَيَّنَ ٱلرُّشْدُ مِنَ ٱلْغَىِّ

"धर्म के मामले में किसी भी प्रकार की ज़ोर-ज़बरदस्ती जाइज़ नहीं,

मार्गदशन और पथभ्रष्टता बिल्कुल प्रभिन्न हो चुके हैं" (कुर्आन 2 : 256)। हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल] के जीवन काल की एक भी घटना ऐसी नहीं जिस में किसी को तलवार की नोक पर ज़बरदस्ती मुसलामन बनाया गया हो।

इस्लाम में युद्ध लड़ने की अनुमति केवल आत्मरक्षा के लिए है। वह भी उन लोगों के विरुद्ध जो इस्लाम को विनष्ट करने के लिए सशस्त्र आक्रमण करते हैं। कुर्आन शरीफ़ का स्पष्ट आदेश है :

أُذِنَ لِلَّذِينَ يُقَـٰتَلُونَ بِأَنَّهُمْ ظُلِمُوا۟

"उन लोगों को (युद्ध लड़ने की) अनुमति दी जाती है जिन के विरुद्ध युद्ध किया जाता है (अर्थात् जिन पर काफिर लोग ज़बरदस्ती जनग ठोंसते हैं) ,इस लिए कि उन पर जुलम किया गया (अर्थात् काफ़िरों ने तलवार उठाने में पहल की और मुसलमानों को खूब सताया)" (कुर्आन 22 : 39)।

وَقَـٰتِلُوا۟ فِى سَبِيلِ ٱللَّهِ ٱلَّذِينَ يُقَـٰتِلُونَكُمْ وَلَا تَعْتَدُوٓا۟

"और अल्लाह के मार्ग में उन लोगों से युद्ध लड़ो जो तुम से युद्ध करते हैं, और इस सीमा से आगे न बढ़ो" (कुर्आन 2 : 190)।

इन आयतों से यह बात दिन के उजाले की तरह निखर कर सामने आ जाती है कि इस्लाम में युद्ध केवल रक्षात्मक है ,अग्रघर्षण ,राज्य विस्तारण या प्रतिष्ठा कमाने के लिए नहीं। इस्लाम युद्ध की अनुमति सिर्फ़ उस सूरत में देता है जब शत्रु इस्लामी राज्य पर धावा बोल दे ,और राज्य का अस्तित्व बचाने के लिए रक्षात्मक उपाय ज़रूरी बन जाएं। यही वजह है कि जों ही दुश्मन सुलाह पर आमादा हो जाए तो मुसलमान अनिवार्यतः सुलाह कर लें। यह बात कुर्आन शरीफ़ की इस आयत से सिद्ध होती है :

وَإِن جَنَحُوا۟ لِلسَّلْمِ فَٱجْنَحْ لَهَا وَتَوَكَّلْ عَلَى ٱللَّهِ

"और यदि वे सुलाह की ओर झुकें तो तू भी उस की ओर झुक जा ,और अल्लाह पर भरोसा रख" (कुर्आन 8 : 39)।

हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]और *सहाबा* को दुश्मनों के विरुद्ध जितनी जनगी कार्यवाहियां करना पड़ीं उन सब का मात्र उद्देश्य आत्मरक्षा था। जब मक्का में इस्लाम बढ़ने लगा ,तो हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]और आप के अनुयायिओं पर घोर अत्याचार होने लगे। अत्याचारों से तन्ग आ कर जब वे घरबार छोड़ बहुत दूर मदीना में शरणागत हुए ,तो मक्का के ज़ालिमों ने उन्हें वहाँ भी चेन से बैठने न दिया। उन्हों ने तीन बार भारी बलदल के साथ मदीना पर हमला कर इस्लाम और उसके अनुयायिओं को समूल विनष्ट कर देना चाहा। इसी अन्यायपूर्ण एवं अत्याचारयुक्त परिस्थित के निमित मुसलमानों को आज्ञा दी गई कि वे अपने बचाव हेतु शक्तिशाली अग्रघर्षक दुश्मन से युद्ध लडें।

हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]स्वभावतः शांतिप्रिय थे ,आप को भलीभांति मालूम था कि अधिकांश परिस्थितियों में अग्रघर्षण का सही उपचार अग्रघर्षक का विनाश नहीं ,बल्कि उदार सुलाह या शांतिसंधि है। क्योंकि इस से उसके मनमस्तिष्क में सुखद परिवर्तन की संभावना पैदा हो जाती है। मक्का विजय के ऐतिहासिक अवसर पर ,जब यही पत्थरदिल अत्याचारी लोग हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]की दया पर थे ,तो आप ने सब को क्षमादान दे दिया। आप ने सिर्फ आम माफ़ी की घोषणा ही नहीं की बल्कि उनको किसी भी प्रकार से बुराभला न कहा। अपने चिरकालीन खूनी दुश्मन के साथ ऐसा उदार और सौहार्दपूर्ण व्यवहार संपूर्ण मानव-इतिहास में अपनी मिसाल आप है।

ज़कात और दान

अब मैं इस्लामी भाईचारे की एक और विशेषता का ज़िक्र करना चाहूँगा। हर धर्म में दानपुण्य का आदेश है। किन्तु इस्लाम वह एकमात्र धर्म है जिस ने इस पुण्यकर्म को सब मुसलमानों के लिए अनिवार्य ठहराया। इस्लामी बरादरी में शामिल होने के लिए ज़रूरी है कि एक धनवान अपने धन का एक भाग अपने निर्धन भाइयों पर व्यय करने की ज़िम्मेदारी स्वीकार कर ले । यह सच है कि इस्लाम में धनवान को सूई के नाके से ऊँट गुज़ारने वाला असंभव कार्य नहीं करना पड़ता। किन्तु उसे एक अमली परीक्षा से अवश्य गुज़रना पड़ता है ,जिस से वह अपने सब से ग़रीब भाई के समकक्ष हो जाता है। समानता

के इस व्यवहारिक प्रशिक्षण के अतिरिक्त इस्लाम अपने अनुयायिओं को विधिवत *ज़कात* अदा करने की सीख भी देता है। *ज़ाकत* एक प्रकार का कर है जो मुस्लिम समाज अमीरों से वसूल कर गरीबों के उत्थान और विकास पर व्यय करता है।

जिस व्यक्ति की धनसंपति एक निश्चित सीमा से बढ़ जाए ,उसके लिए ज़रूरी है कि वह पूर्वनिश्चित दर के अन्तर्गत उस का एक भाग अलग निकाल दे। इस्लामी राज्य या मुस्लिम समाज इस राशि को ग्रहण कर इसे कुर्आनविहित निम्न विभागों के अन्तर्गत व्यय करने के लिए बाध्य है :

۞ إِنَّمَا ٱلصَّدَقَٰتُ لِلْفُقَرَآءِ وَٱلْمَسَٰكِينِ وَٱلْعَٰمِلِينَ عَلَيْهَا وَٱلْمُؤَلَّفَةِ قُلُوبُهُمْ وَفِى ٱلرِّقَابِ وَٱلْغَٰرِمِينَ وَفِى سَبِيلِ ٱللَّهِ وَٱبْنِ ٱلسَّبِيلِ ۖ فَرِيضَةً مِّنَ ٱللَّهِ ۗ

"ज़कात (की राशि) केवल निर्धनों और अभावग्रस्तों के लिए है ,और इस के प्रबन्धकर्ताओं के लिए ,और जिन के दिल सत्य की ओर प्रवृत्त किये जाते हैं, और दासों को मुक्ति दिलाने और ऋणियों के लिये , और अल्लाह के मार्ग में ,और यात्री के लिए —इसे अल्लाह की ओर से अनिवार्य ठहराया गया है" (कुर्आन 9 : 60)।

"अल्लाह के मार्ग में" ,इस पद के अन्तर्गत समस्त जनहित संबंधी खैराती काम आ जाते हैं। *ज़कात* धर्मजगत् का एक विचित्र विधान है क्योंकि यह एकसाथ कर भी है और दान भी। दान की दृष्टि से इसकी अनिवार्यता एकदम नैतिक है। कर की दृष्टि से देखा जाए तो भी इसका अनुष्ठान सरासर नैतिक ही है ,क्योंकि प्रशासन इस मामले में ज़कातदाता पर कोई ज़ोरज़बरदस्ती नहीं कर सकता। तात्पर्य यह कि *ज़कात* केवल समाज के विभिन्न अंगों में समानता उत्पन्न करने में ही सहायक नहीं ,बल्कि यह उच्च मानवीय भावनाओं अर्थात् प्रेम और आपसी सौहार्द की उत्पति का भी प्रमुख साधन है। ध्यान रहे कि कुर्आनानुसार दानपण्य एक कर्तव्य है जिस का पालन एक इन्सान दूसरे इन्सान के लिए करता है। अतः इस की

अदायगी में देनेवाले के उपकार ,आभार या उच्चता और लेने वाले की हीनता का सवाल ही पैदा नहीं। अल्लाह फ़रमाता है :

اَلَّذِينَ يُنفِقُونَ أَمْوَالَهُمْ فِي سَبِيلِ اللَّهِ ثُمَّ لَا يُتْبِعُونَ مَا أَنفَقُوا مَنًّا
وَلَا أَذًى لَّهُمْ أَجْرُهُمْ عِندَ رَبِّهِمْ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُونَ
﴿٢٦٢﴾ قَوْلٌ مَّعْرُوفٌ وَمَغْفِرَةٌ خَيْرٌ مِّن صَدَقَةٍ يَتْبَعُهَا أَذًى وَاللَّهُ غَنِيٌّ
حَلِيمٌ ﴿٢٦٣﴾ يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا لَا تُبْطِلُوا صَدَقَاتِكُم بِالْمَنِّ وَالْأَذَىٰ

"वे लोग जो अपने धन को अल्लाह के मार्ग में व्यय करते हैं ,और व्यय के बाद उपकार नहीं जताते और न दुख देते हैं ,उनका प्रतिफल उनके रब के पास है। और उन्हें कोई भय नहीं और न वे चिन्तित होंगे। एक अच्छा बोल उस दान से उत्तम है जिस के बाद (दान लेने वाले को) दुख पहुँचाया जाए अल्लाह सर्वरूप सम्पन्न ,अति सहनशील है । हे ईमान वालो ! अपने दान को उपकार जता कर और सता कर व्यर्थ न करो" (कुर्आन 2 : 262–264)।

कुर्आन शरीफ़ में ,तथा हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]के कथनों में *ज़कात* को नमाज़ की तरह अनिवार्य ठहराया गया है। रही आम दानपुण्य की बात तो इस से सारा कुर्आन भरा पड़ा है। इस दिव्य ग्रन्थ में केवल गुलामों को आज़ाद करने (कुर्आन 2 : 177 , 90 : 13) ,ग़रीबों को भोजन कराने (कुर्आन 69 : 34) ,अनाथों का संरक्षण करने (कुर्आन 17 : 34) तथा जनसाधारण के प्रति उपकार करने पर ही बल नहीं बल्कि नेकी के मामूली मामूली कामों को भी बड़ा महत्त्वपूर्ण बताया गया है और इन से रुकने वाले को नमाज़ की असल आत्मा से वंचित कहा गया है (कुर्आन 107 : 4–7)। हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]के पवित्र कथनों ने *'दान'* शब्द को और भी व्यापकार्थक बना दिया है।[1]

---

1. हजरत पैग़म्बरश्री[सल्ल]का कथन है : كُلُّ مَعْرُوفٍ صَدَقَةٌ *'कुल्लु मअरूफ़िन सदक़तुन'*, (*बुखारी व मुस्लिम*),अर्थात् *'प्रत्येक नेकी सदक़ा यानि दान है'*।

हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]ने फ़रमाया है :

(क) *'रास्ते से कोई हानिकारक वस्तु हटा देना भी दान है'* ।

(बुखारी व मुस्लिम)

(ख) *'किसी को रास्ता बता देना भी दान है'* । *(तिर्मिज़ी)*

(ग) बेजुबान जीव–जन्तुओं से अच्छा व्यवहार भी दान ही है :

'जो मुसलमान वृक्ष लगाये या खेती बोए ,और उस से कोई इन्सान या पक्षी या पशु खा लेता है ,वह उसके लिए दानपण्य बन जाता है''।

(बुखारी व मुस्लिम)

कुर्आन शरीफ़ की शिक्षानुसार दान और सुव्यवहार के पात्र केवल इन्सान (मुसलामन तथा ग़ैरमुस्लिम) ही नहीं बल्कि बेजुबान जानवर भी हैं। इन दोनों बातों का ज़िक्र एक साथ आया है :

وَفِيٓ أَمۡوَٰلِهِمۡ حَقّٞ لِّلسَّآئِلِ وَٱلۡمَحۡرُومِ

''मुसलमानों के माल में माँगने वालों और अभावग्रस्तों का हक़ है'(51 : 19)। *'अभावग्रस्त'* के लिए आयत में ٱلۡمَحۡرُوم *''अल्–महरूम''* शब्द प्रयुक्त हुआ है ,जिस का एक अर्थ है , *'वे जीव जो बोल कर अपनी आवश्यकता बयान नहीं कर सकते, जैसे कुत्ता'*। *(इमाम राग़िब)*

दान में ऐसी वस्तुएं दी जाएं जो दानी को रुचिकर हों ,जिन्हें वह अपने लिए पसन्द करता हो। अल्लाह फ़रमाता है :

يَٰٓأَيُّهَا ٱلَّذِينَ ءَامَنُوٓاْ أَنفِقُواْ مِن طَيِّبَٰتِ مَا كَسَبۡتُمۡ..................

وَلَا تَيَمَّمُواْ ٱلۡخَبِيثَ مِنۡهُ تُنفِقُونَ وَلَسۡتُم بِـَٔاخِذِيهِ

''हे ईमान वालो ! उन उत्तम वस्तुओं में से दान करो जो तुम कमाते हो .. ..और रद्दी चीज़ दान में देने की चेष्टा न करो ,जबकि तुम उसे स्वयं लेने वाले नहीं ....'' (कुर्आन 2 : 267)।

खैराती या दानपुण्य के कामों के पीछे प्रभु का प्रेम ही कार्यरत होना चाहिए दिखावा या नाम कमाना नहीं ::

وَيُطْعِمُونَ ٱلطَّعَامَ عَلَىٰ حُبِّهِۦ مِسْكِينًا وَيَتِيمًا وَأَسِيرًا ﴿٨﴾

إِنَّمَا نُطْعِمُكُمْ لِوَجْهِ ٱللَّهِ لَا نُرِيدُ مِنكُمْ جَزَآءً وَلَا شُكُورًا ﴿٩﴾

"और (सच्चे मुसलमान वे हैं जो) अल्लाह के प्रेम हेतु गरीब और अनाथ और कैदी को भोजन कराते हैं ,कहते हैं , हम तुम्हें सिर्फ़ अल्लाह की प्रसन्नता हेतु भोजन कराते हैं — हम तुम से न कोई बदला चाहते हैं और न कोई धन्यवाद" (कुर्आन 76 : 8–9)।

11. नैतिक शिक्षा में व्यापकता

कुर्आन शरीफ़ किसी जाति ,देश या काल के लिए विशेष नहीं। अतएव इस की नैतिक शिक्षा मानवसमाज की भांति विश्वव्यापी है। इस दिव्य ग्रन्थ में सभी इन्सानों तथा मानव-जीवन संबंधी सभी परिस्थितियों के लिए मार्गदर्शन मौजूद है। जाहिल और बर्बर आदमी ,महाज्ञानी दार्शनिक ,अति व्यस्त व्यापारी ,वैरागी ,धनवान और निर्धन — अर्थात् सभी वर्ग मार्गदर्शन पा सकते हैं। कुर्आन शरीफ़ में मानव-जीवन संबंधी विभिन्न नियम और सिद्धांत हैं। इस में हर इन्सान के वातावरण और परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षाएं और नियम मौजूद हैं। कुर्आन हर व्यक्ति को इस बात की खुली आज़ादी देता है कि जो शिक्षा उसे अपने हालात के अधिक अनुकूल लगे उसी पर अमल करे, फ़रमाया है :

وَٱتَّبِعُوٓا۟ أَحْسَنَ مَآ أُنزِلَ إِلَيْكُم مِّن رَّبِّكُم

"और उस सर्वोत्तम बात पर चलो जो तुम्हारे रब की ओर से तुम्हारी ओर उतारी गई ....." (कुर्आन 39 : 55)।

कुर्आन शरीफ़ में एक ओर वे आदेश और नियम हैं जिन का प्रयोजन उन लोगों को ऊपर उठाना है जो सभ्यता के निम्नतम स्तर पर हैं। ऐसे लोगों को समाज और सामाजिकता के मोटे उसूल सिखाये गए हैं। और दूसरी ओर

इस में वे आदेश और नियम हैं जो उन उच्चस्तरीय लोगों के लिय प्रयोज्य हैं जो नैतिकता और आध्यात्मिकता की उच्चतम सिद्धियां प्राप्त करना चाहते हैं। उच्च एवं आदर्श नैतिक शिक्षा इन्सान की उन्नति और विकास के लिये अवश्यंभावी है ,किन्तु इस से सिर्फ़ वही लोग लाभान्वित हो सकते हैं जो इस स्तर को प्राप्त होते हैं। किसी भी देश ,दल या जाति का अधिकांश ,चाहे उस का नैतिक या सभ्यता संबंधी स्तर कितना ही बुलन्द क्यों न हो ,इस आदर्श को प्राप्त नहीं होता। यही कारण है कि कुर्आन शरीफ़ ने मानवसमाज के प्रत्येक वर्ग की परिस्थितियों के अनुरूप अलग अलग नियम प्रस्तुत किये। जिन को अपना कर इन्सान एक बर्बर वहशी से अत्युच्च आध्यात्म-पुरुष बन जाता है। कुर्आनी शिक्षा इन्सानी जीवन के सभी पहलुओं के लिये प्रयोज्य है और इसका मात्र उद्देश्य यही है कि इन्सान में मौजूद सभी क्षमताएं और शक्तियां पूर्णतया विकसित हों।

इस्लाम इन्सान में मौजूद सभी गुणों और शक्तियों का विकास और प्रदर्शन चाहता है ,हाँ इस मामले में वह केवल एक ही प्रतिबन्ध लगाता है ,वह यही कि प्रत्येक गुण या शक्ति का *प्रयोग सही समय पर सही ढंग से हो*। कुर्आन इन्सान को विनम्रता के साथ वीरता का प्रदर्शन भी सिखलाता है लेकिन मर्यादा में रहते हुए। आशय यह कि जब परिस्थिति विनम्रता का तक़ाजा करे तो विनम्रता प्रकट की जाए और बल का प्रयोग न करे। इस्लाम में उपेक्षावृत्ति और क्षमा पर विशेष बल है ,लेकिन जब जुरम की सज़ा का प्रश्न हो तो सज़ा का जुरम के मुताबिक होना ज़रूरी है। इस्लाम की शिक्षानुसार *"क्षमा का प्रयोग उसी समय किया जाए जब तुम्हें लगे कि क्षमादान सुधार या भलाई में सहायक होगा।"* इस्लाम इन्सान को अति विषम परिस्थितियों में भी उच्च नैतिकता प्रकट करने की सीख देता है। जब ईमानदारी के कारण हालात और बिगड़ जाने की आशंका हो उस वक्त भी ईमानदारी को न छोड़ने की शिक्षा है। जब सच बोलने से किसी अपने का अहित होता हो उस वक्त भी ज़ुबान को असत्य की मलिनता से अपवित्र न करने का आदेश है। अपने हितों का बलिदान कर दूसरों की सहायता करना ,घोर संकट में धैर्य रखना, दुख देने वालों से अच्छा व्यवहार करना —ये भी इस्लामी शिक्षा के

अनिवार्य अंग हैं। इस के साथ ही इस्लाम मनुष्य को अपने हर काम में माध्यमिकता प्रदर्शित करने की सीख देता है। परमात्मा ने इन्सान में जितनी भी क्षमताएं रख दी हैं उन सब का यथावसर प्रयोग और प्रदर्शन अनिवार्य है। इस्लाम इन्सान को संसार या सांसारिकता से विमुख नहीं करता। इस में प्रभु-उपासना पर विशेष बल अवश्य है ,किन्तु एक वैरागी की भांति दुनिया त्याग कर नहीं। यह इन्सान को धन व्यय करने की अनुमति देता है लेकिन इस तरह नहीं कि अपव्यय के कारण वह مَلُومًا مَّحْسُورًا *'निन्दित और बेबस होकर रह जाए'* (कुर्आन 17 : 29)। इस्लाम इन्सान को विनम्रता और आज्ञाकारिता की सीख देता है लेकिन आत्मसम्मान खो कर नहीं। इस्लाम उपेक्षा और क्षमा भाव प्रदर्शित करने की शिक्षा भी देता है लेकिन अपराधियों को अधिक उद्दंड बनाने के लिये नहीं। इस्लाम इन्सान को अपने सभी अधिकार इस्तेमाल करने की अनुमति देता है किन्तु दूसरों के अधिकारों में हस्तक्षेप करने की इजाज़त कदापि नहीं देता। इसी सिल्सिले में अन्त पर एक और बात कहना चाहूँ गा वह यह कि इस्लाम इन्सान को अपने धर्म के प्रचार व प्रसार की पूरी आज़ादी देता है लेकिन दूसरों की धार्मिक मान्यताओं पर कीचड़ उछाल कर नहीं।'

इति

1. अल्लाह फ़रमाता है :

(क) *"और उन (देवी–देवताओं) को गाली मत दो ,जिन को ये अल्लाह के सिवाय पुकारते हैं ....."।* (कुर्आन 6 : 108),

(ख) *"और किताब वालों से वादविवाद न करो किन्तु ऐसी रीति से जो उत्तम हो"।* (कुर्आन 29 : 46)

(ग) *"(लोगों को) अपने रब के मार्ग की ओर बुला —बुद्धिमत्ता और सदुपदेश के साथ,, और इन (धर्म–विरोधियों) के साथ ऐसे ढंग से वादविवाद कर जो उत्तम हो"।* (कुर्आन 16 : 125)

(Batmaloo.Srinagar 06-6-2000,at 6.45PM)

Books on Islam

Ahmadiyya Anjuman Isha'at Islam, Lahore, U.S.A.

" Probably no man living has done longer or more valuable service for the cause of Islamic revival than Maulana Muhammad Ali of Lahore. His literary works, withthose of the late Khwaja Kamal-ud-Din, have given fame and distinction to the Ahmadiyya Movement"-- M. Pickthall, famous British Muslim and translator of Holy Quran.

Books by Maulana Muhammad Ali:

The Holy Qur'an ISBN: 0-913321-01-X pp.lxxvi + 1256

Arabic text, with English translation, exhaustive commentary, comprehensive Introduction, and large Index. Leading English translation. Has since 1917influenced millions of people all over the world. Model for all later translations.Thoroughly revised in 1951.

"To deny the excellence of Muhammad Ali's translation, the influence it has exercised, and its proselytising utility, would be to deny the light of the sun" —

Maulana Abdul Majid Daryabadi, leader of orthodox Muslim opinion in India.

"The first work published by any Muslim with the tharoughness worthy of Quranicscholarship and achieving the standards of modern publications" --

Amir Ali in The Student's Quran, London, 1961.

The Religion of Islam ISBN: 0-913321-32-X 1983 retypeset edition, pp. 647

Comprehensive and monumental work on the sources, principles, and practices of Islam. First published 1936.

"...an extremely useful work, almost indispensable to the students of Islam" —

Dr Sir Muhammad Iqbal, renowned Muslim philosopher.

"Such a book is greatly needed when in many Muslim countries we see personseager for the revival of Islam, making mistakes through lack of just this knowledge" —

'Islamic Culture', October 1936.

A Manual of Hadith ISBN: 0-913321-15-X pp.400

Sayings of Holy Prophet Muhammad on practical life of a Muslim, classified by subject. Arabic text, English translation and explanatory notes.

Muhammad The Prophet ISBN: 0-913321-07-9 1984 retypeset edition, pp. 208

Researched biography of Holy Prophet, sifting authentic details from spurious reports. Corrects many misconceptions regarding Holy Phophet's life.

Early Caliphate ISBN: 0-913321-27-3 1983 retypeset edition, pp. 214

History of Islam under first four Caliphs.

"(1) Muhammad The Prophet, (2) The Early Caliphate, by Muhammad Ali together constitUle the most complete and satisfactory history of the early Muslims hitherto compiled in English" -'Islamic Culture', Apri11935.

Living Thoughts of Prophet Muhammad Pp. 150

Life of Holy Prophet. and his teachings on various subjects.

The New World Order Pp. 170

Islam's solution to major modern world problems.

Founder of the Ahmadiyya Movement 1984 U.S,A. edition. Pp. 100.

Biography ofHazrat Mirza by Maulana Muhammad Ali who worked closely with him for the last eight years of the Founder's life.

Other major publications:

The Teachings of Islam by Hazrat Mirza Ghulam Ahmad. Pp. 226

Brilliant, much-acclaimed exposition of the Islamic path for the physical, moral andspiritual progress of man, first given as a lecture in 1896,

"...the best and most attractive presentation of the faith of Muhammad which we have yet come across'. —'Theosophical Book Notes',

Other English translations as well as original Urdu books of Hazrat Mirza are also available .

Muhammad in World Scriptures by Maulana Abdul Haque Vidyarthi. Pp. 1500 in 3 vols,

Unique research by scholar of religious scriptures and languages, showing prophecies about the Holy Prophet Muhammad in all major world scriptures.

Ahmadiyyat in the Service of Islam, by Naseer A. Faruqui, ex-Head of the Pakistan Civil Service. Pp. 149, printed in the U.S,A.

1983 book dealing with the beliefs, claims and achievements of Hazrat Mirza Ghulam Ahmad, and the work of the Lahore Ahmadiyya Movement.

The Great Religions of the World, by Mrs U. Samad. Pp. 258

Anecdotes from the Life of the Prophet Muhammad, by Mumtaz A. Faruqui. Pp. 102

Anecdotes from the Life of the Promised Messiah, by Mumtaz A. Pp. 131

Islam & Christianity by Naseer A. Faruqui

For prices and delivery of these books and inquiries about other books and free literature, Contact **The Islamic Publishing House,**
The Ahmadiyya Mosque,
Qalamdan Pora,
Srimngar - 2
Kashmir 190002